

सप्तम सोपान – उत्तरकाण्ड

ओम तत्सदात्मने नमः

दो.- रहा एक दिन अवधिकर, अति आरत पुर लोग।

जहं तहं सोचहिं नारि नर, कृस तन राम वियोग॥

सगुन होंहिं सुन्दर सकल, मन प्रसन्न सब केर।

प्रभु आगमन जनाव जनु, नगर रम्य चहुं फेर॥

सातवीं भूमिका में पहुंच बन गई। स्थिति मिल गई। तो जो विभीषण का राजतिलक हुआ अब उसके बाद साधना निश्शेष हो जाती है। जीवत्व से मुक्त होकर निर्लेप आत्मस्वरूप में स्थित हो गया। यही राम का रूप है। यही तुरीयावस्था, कैवल्य पद है -

‘तुरीय मेव केवलं’

तो एक तरह से विभीषण की राजगद्दी ही राम की राजगद्दी है। राम का ही पद है, राम का ही राज्य है, जो उसे मिला है। लेकिन योगी के अन्दर आगे कुछ और मरहले आते हैं। उत्तर काण्ड में उनकी ओर संकेत किया गया है। उत्तर का अर्थ होता है आखिरी या बाद वाला। तो इसमें प्राप्ति के बाद महापुरुष की रहनी और कुछ अन्य बातों का संकेत किया गया है। और इसलिए भी उत्तरकाण्ड नाम दिया गया क्योंकि यह इस रामायण का आखिरी सोपान है, सबसे बाद का। तो राम और विभीषण एक ही तत्व है - आत्मा। बाहर अलग-अलग दिखाए गए हैं अवस्था भेद से। चाहे उसे साधक कहो, चाहे जीवात्मा कहो चाहे आत्मा कहो, चाहे परमात्मा कहो, और चाहे ज्ञान कहो चाहे विज्ञान कहो, है- वही चीज। इसलिए यहां राम की राजगद्दी का प्रसंग भी उसी रूप में लिया गया है - परमात्मा के मिलन के रूप में। साधना के अंत में स्वरूप प्राप्ति की स्थिति के रूप में यहां लिया गया है।

साधक के अन्दर, साधना की आखिरी अवस्था का चित्रण है। इसलिए इसको वहां बाहर से बिल्कुल उड़ा देना है। वहां अयोध्या में नहीं पहुंच जाना। यह शरीर ही अवध है। और यह उस समय अवध बनता है जब इस शरीर में ईश्वर को लेने की पात्रता आ जाती है। इसी अवध में भगवान पैदा होते हैं। और अवधि कहते हैं समय को। ईश्वरीय निष्ठा आने से लेकर साधना की पूर्णता तक की जो अवधि है, उस पीरियड को-शरीर की उस अवधि को - अवध कहते हैं। इसमें जो ईश्वरीय भाव बना रहता है - वह है भरत। तो जब साधक ने अपने अन्दर के विकारों को समाप्त कर लिया

और साधना की पूर्णता का समय आ गया। अब जीव और परमात्मा का मिलन होने का समय आ गया। अब इसमें देर नहीं है। उस अवस्था की प्राप्ति में बहुत कम समय रह गया है - रहा एक दिन अवधिकर। चौदह वर्षों का वनवास रूप चौदह अध्यात्मों की साधना का कोर्स पूरा हो चुका - अब भगवान के मिलने में देर नहीं लगना चाहिए। इसी जीवन में, इसी अवधि में प्राप्ति होना है। तो उस आखिरी प्वाइंट (बिन्दु) पर पहुँच कर साधक के अन्दर मिलन की ललक तीव्र हो जाती है। उसके अन्दर भावावेग और व्याकुलता बढ़ जाती है। शरीर रूपी अवध के अन्दर रहने वाले जितने अवयव हैं, जितनी भाव-वृत्तियाँ हैं, सब उत्कण्ठित हो उठती हैं। मिलने की घड़ी कब आएगी? इस शरीर के अन्दर, इस अवधपुरी में बहुत से लोग रहते हैं। अनेक प्रकार के विचार, अनेक तरह की भावनाएँ, यही सब हैं वहाँ के नर-नारी। सबमें रुचि बनती है कि मिलन हो। हमारा उद्धार हो जाय। यह जीवात्मा, परमात्मा में एकाकार हो जाय। ऐसी आतुरता जो उस अवस्था में साधक के अन्दर आती है, उसी का चित्रण इसमें किया गया है।

ऐसी कंडीसन (दशा) अगर तुम्हारी बन जाय, तब समझ लो कि अब ठीक है। इस शरीर के अन्दर तीव्र लगन जाग जाय परमात्मा के लिए, प्रेम उमड़ने लगे, पात्रता आ जाय। ये इंद्रियाँ, अधिभूत, अधिदैव, अधियज्ञ - जितने इस शरीर के चलाने वाले हारमोन्स (जीवांश) हैं इसके अन्दर, वे सब तैयार हो जाय और उत्कण्ठित हो उठें मिलने के लिए। कि अब हमारे राम आने ही वाले हैं। उन्हें पाकर हम सब कृतार्थ हो जाएंगे। ऐसे ये सब अवधवासी अत्यंत आर्तभाव से प्रतीक्षा में खड़े हैं - अति आरत पुर लोग। और सगुन होंहि सुन्दर सकल।

योगी को अन्दर से अनुभूति मिलने लगती है कि अब प्राप्ति का समय आ गया है। संकेत मिलने लग जाते हैं। वह समझ जाता है कि अब हम इस स्थिति में आ गए। कि चेतन का प्रतिबिम्ब हमें मिलने वाला है। तो उस चेतन के प्रतिबिम्ब को प्राप्त करने के लिए अन्दर से ललक उठता है। आतुर हो उठता है। जैसे ऋतुकाल में स्त्री गर्भाधान के लिए तैयार होती है और पुरुष के संयोग से गर्भाधान हो जाता है। तो उस तीव्र लगन की स्थिति में साधक की बुद्धि ऋत से भर जाती है। महर्षि पतंजलि कहते हैं-

‘ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा’

साधक की बुद्धि ऋतम्भरा हो जाती है। तो परमात्मा को अपने गर्भ में ले लेती है। भगवान अन्दर प्रादुर्भूत हो जाते हैं। ऐसा वह समय अब आ गया है कि संकेत

मिलने लगे। अन्दर से खुशहाली आती है। और नगर रम्य चहुं फेर। शरीर के अन्दर इंद्रियों को देखें, अन्तःकरण को देखें - सबमें रमणीयता आ गई है। ये सब विषय रूपी मलिनता को त्याग चुके हैं - ईश्वरीय धर्मों को धारण करने से रमणीय बन गए हैं। ईश्वर का मनन निरन्तर हो रहा है। बुद्धि को परमात्मा ने आच्छादित कर लिया है। इस तरह से शरीर रूपी अयाध्या में चारों तरफ अन्दर-बाहर रम्यता छा गई है। खुशियाली आ गई है। विह्वलता आ गई है प्रफुल्लता छा गई है। साधक के अन्दर-बाहर उल्लास और उमंग झलकने लगती है, जब वह प्राप्ति वाली स्थिति बनती है। साधना में रगड़ करते-करते, पहुँच वाली स्थिति में खुशहाली की कंडीशन हर साधक में आती है।

दो.- कौसल्यादि मातु सब, मन अनंद अस होइ।

आयउ प्रभु श्री अनुज जुत, कहन चहत अब कोइ॥

भरत नयन भुज दच्छिन, फरकत बारहिं बार।

जानि सगुन मन हरष अति, लागे करन विचार॥

माताएं हैं - भक्ति रूपी कौसल्या, कर्तव्य रूपी कैकयी और सुमति रूपी सुमित्रा। ये सब बहुतप्रफुल्लित हो गई हैं। जैसे कि मानो भगवान के आने की खबर अब मिलने ही वाली है। अब इसमें विलम्ब नहीं रह गया है कि जब हम सब भगवान को पाकर धन्य-धन्य हो जाएंगी। साधक की भक्ति सार्थक हो जाती है, जब परिणाम मिल जाता है। कर्तव्यता कैकयी कृतार्थ हो जाती है। अब इसमें कोई बाधा नहीं रह गई है। भाव रूप भरत अनुकूलता अनुभव करता है। अनुकूल सगुन-संकेत मिलने लगे हैं कि अब फल प्राप्ति का समय आ गया है। साधक को उपलब्धि जब होने वाली होती है, तब ऐसे शुभ संकेत मिलने लगते हैं और वह भाव विभार हो उठता है। दाहिनी भुजा और दाहिनी आंख फड़कना अच्छा माना जाता है।

रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा॥

कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौ मोहिं बिसरायउ॥

अहह धन्य लछिमन बड़ भागी। राम पदारविन्द अनुरागी॥

कपटी कुटिल मोहिं प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा॥

जौ करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निसतार कलप सत कोरी॥

भगवान के आने का समय आ गया है। अनुकूल सगुन-संकेत मिल रहे हैं। लेकिन सगुनों का परिणाम सामने नहीं आता। तो अब जो बीच का समय शेष बच रहा है, इसमें साधक को चाहिए कि अनुराग युक्त होकर भगवान से विनय करे।

और विनय करते हुए अपने आप को दोषी कहे। भगवान की खूबियों का वर्णन करे-मन ही मन चिंतन करे। अपने आप को धिक्कारे कि मेरे अन्दर कमियां हैं। धिक्कार है मुझे कि ऐसे दयालु भगवान हैं, फिर भी मुझे उनके निकट होने का सौभाग्य नहीं मिल रहा है। मैं कपटी हूँ, पापी हूँ, मुझमें गड़बड़ी है जिसके कारण हे भगवान ! आपके दर्शन से वंचित हो रहा हूँ। ईश्वरीय प्रकाश से मैं बंचित हो रहा हूँ - यह मेरी ही किसी खराबी के कारण ऐसा हो रहा है। हे भगवान ! आप क्षमा के सागर हैं। आप कृपा के सागर हैं। मैं महान पापी और कुटिल हूँ - ऐसे खूब ग्लानि करके, करुणा भाव से मन ही मन भगवान से रोना चाहिए। ऐसा करने से अपनी जो दूरी है भगवान से, वह कम हो जाती है। भगवान भक्त के आर्तभाव को देखकर द्रवित हो जाते हैं - कृपा कर देते हैं।

दो.- राम विरह सागर महं, भरत मगन मन होत।

विप्ररूप धरि पवन सुत, आइ गयउ जनु पोत।।

बिना वैराग्य के भगवान नहीं मिलते। हमारे अन्दर वैराग्य की कमी का ही कारण होता है। भरत के रोने-धोने का मतलब है-साधक में करुणा भाव आया, और हनुमान के आने का अर्थ है भगवान की प्रेरणा से अन्दर वैराग्य जाग्रत हुआ। वैराग्य रूप हनुमान के आ जाने पर भगवान के आगमन की सूचना मिल गई। साधक के अन्दर वैराग्य का उदय होने पर निश्चिंतता बन जाती है कि अब भगवान अवश्य मिलेंगे। तो हनुमान ने संदेश दिया कि भगवान आ रहे हैं। इसका अर्थ यह समझना चाहिए कि जब साधक के अन्दर ध्यान की स्थिति में विरह भाव युक्त संकल्प उठे, तो उधर अन्दर ही अन्दर वैराग्य युक्त संकल्पकी एक धारा चली और अनुभूतियाँ मिल गईं कि अब शीघ्र ही मिलन की स्थिति बनने वाली है। इन अनुभूतियों को संकेत या सगुन भी कहते हैं। भगवान की सगुन लीला कहते हैं-अनुभव या अनुभूतियां कहते हैं। ये सगुन या संकेत चार तरह से मिलते हैं-साधक की स्थिति के अनुसार भगवान उसे अलौकिक रूप से सब बताते रहते हैं। एक अंग फड़कन का तरीका है। बाहरी किसी माध्यम से भी सगुन-संकेत मिल जाते हैं। दूसरे प्रकार के संकेत स्वप्न के जरिए मिलते हैं। तीसरे सुषुप्ति या ध्यान की अवस्था में संकल्प स्तर से, विचार स्तर पर अनुभूतियाँ मिलती हैं। चौथे प्रकार के संकेत को आकाशवाणी कहते हैं, आत्मा की आवाज है वह। तो यहाँ इस प्रसंग में विचार स्तर की अनुभूतियों की बात लिखी गई है। हनुमान के आने का मतलब वैराग्यमयी अनुभूतियों के जरिए स्पष्ट सूचना साधक को मिल गई कि अब परिणाम मिलने वाला है। तो मानो उस विरहभाव के प्रबल आवेग में जो डूब रहा था, उसे सहारा मिल गया। वह आश्वस्त हो गया, प्रसन्न हो

गया कि अब भगवान मिलेंगे। तो जितनी व्याकुलता थी, समाप्त हो गई, और उसके हर्ष का अन्त नहीं रह गया।

कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहि राम पिरीते॥

एहि संदेस सरिस जग माहीं। करि विचार देखेउं कछु नाहीं॥

नाहिन तात उरिन मै तोहीं। अब प्रभु चरित सुनावहु मोहीं॥

तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा॥

यह हनुमान रूपी वैराग्य ही दुःख को मिटाने वाला तत्व है। हनुमान का मतलब-मान का जो हनन करे। यह जो संसार है, इसे मान लिया गया है। वस्तुतः यह है नहीं। संसार में जो राग-द्वेष, ईर्ष्या-स्पर्धा सब भरा पड़ा है; इस सबको मिलाकर “मान” का रूप बनता है। इस मान का जो हनन करे, इसको जो नष्ट करता है-वह तत्व है वैराग्य। उसका नाम है हनुमान। संसार की मान्यता को मिटाने वाला यही तत्व है। यह जिसे मिल जाता है, तो फिर मानो भगवान का मिलना निश्चित हो गया। यह हनुमान जब आ जाता है, तो अन्दर विश्वास दृढ़ीभूत होता है कि अब कल्याण होगा। इसे हम लोग अपनी भाषा में वैराग्य कहते हैं। संसार से राग का त्याग हो जाना ही वैराग्य है। भगवान में अटल-अविच्छिन्न अनुराग हो जाना ही वैराग्य है। ऐसा यह हनुमान आया।

और भक्त के हृदय में भगवान के प्रति जो भाव रहता है, वह भरत है। तो जब संसार से कनेक्शन कट आफ (संबंध विच्छेद) हो गया, और भगवान संपुट में आकर बैठ गया, तो परिणाम मिल गया। परिपूर्ण हो गया। परमात्मा ही परमात्मा रह जाएगा। यह संसार रूप बर्फ गल-गल कर परमात्मा रूप पानी बन जाएगा। फिर न किसी चीज की जरूरत रह जाएगी, न इच्छा रह जाएगी। न कोई कमी रह जाएगी, न किसी बात का रोना रह जायगा। न गाना रह जाएगा। यह आखिरी है-एण्ड (अंत) है साधना का। तो अब वह समय आ गया है।

दो.- राम प्रान प्रिय नाथ तुम, सत्य बचन मम तात।

पुनि पुनि मिलत भरत सुनि, हरष न हृदय समात॥

सो.- भरत चरन सिरु नाइ, तुरत चलेउ कपि राम पहिं।

कही कुशल सब जाइ, तुरत चलेउ प्रभु जान चढ़ि॥

हनुमान बन्दर नहीं है। यह वैराग्यमय संकल्प है, जो परावाणी से अनहद द्वारा भेजा जाता है, कि वहाँ की कंडीशन (स्थिति) ऐसी है। विचार किया। उसके रूप को पकड़ा। क्या समाचार है भरत के? भाव-क्षेत्र में कैसा-क्या चल रहा है वहाँ, इसका

बोध किया। वैराग्य युक्त संकल्प के द्वारा यह काम हो गया। और वह वापस हो गया, जहाँ से आया था। वहाँ पता चल गया, तो फिर आगे का काम होने लगेगा। इस तरह से महात्मा अथवा भगवान, अपने पायकों द्वारा साधकों को लाभ देते रहते हैं। अन्तर्जगत में अनुभूतियाँ देते रहते हैं। कम्युनिकेशन (परस्पर संवाद) होता रहता है।

सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुविर यह देसा॥

जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। वेद पुरान विदित जग जाना॥

अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥

जन्म भूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि सरजू बह पावनि॥

जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं वासा॥

वेद, पुराण, शास्त्र सब वैकुंठ इत्यादि श्रेष्ठ धामों का वर्णन करते हैं, लेकिन यह अवध अलौकिक धाम है। यह शरीर रूपी अवध मुझे सबसे अधिक प्रिय है। लेकिन इस बात को सब लोग समझते नहीं हैं - यह प्रसंग जानै कोउ कोऊ। इसे वही जानते हैं, जो उसे प्राप्त करते हैं। तो यहाँ जो यह अवध की तारीफ की गई है, यह इस शरीर की तारीफ है। क्योंकि यह शरीर ईश्वर से भेंट कराने के लिए मिलता है। मानव तन के रूप में एक अवसर, एक समय-यह एक अवधि मिली है। इसी अवधि में परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है। यही वह अवधपुरी है, जहाँ भगवान अवतरित होता है। इसलिए इसकी महिमा सबसे बढ़कर है।

चौरासी लाख योनिओं में मानव तन ही एक ऐसा है, जिसमें भगवान की प्राप्ति हो सकती है। इसलिए इसे इतना महत्व दिया है।

‘सुर दुर्लभ सद्ग्रंथनि गावा।’

तो जब जिस शरीर में परमात्मा का आगमन होता है, तब उसके अन्दर का माहौल ऐसा ही होता है जैसा यहाँ बताया गया है। जैसे पूर्णिमा के चन्द्रमा को देखकर समुद्र में तरंगे उठती हैं, वैसे ही इस शरीर के अन्दर जब भगवान आते हैं, तो जितने इसमें अवयव हैं वे सब प्रफुल्लता से भर जाते हैं। जितनी इन्द्रियां, लंग्स, नर्व्स, वेंस (नाड़ियाँ) ये सब नारियाँ हैं। खुशी की तरंग रग-रग में आ जाती है। सब आनन्द से आप्लावित होकर उमड़ पड़ती हैं, जब साधक को जीवन का चरम लक्ष्य मिल जाता है। उसका मानव तन में जन्म लेना सार्थक हो जाता है। उसके अन्दर आनन्द-सिंधु सुख रासी राम उदीयमान हो गया है। इसलिए उसका रोम-रोम प्रफुल्लित हो जाता है। इससे अच्छा समय, इससे उत्तम कोई धाम, या इससे बड़ा

और कोई पद, कोई डिग्री अथवा इससे ज्यादा महत्वपूर्ण कोई उपलब्धि नहीं है। इस तरह से यह मनुष्य शरीर ही अवध कहा जाता है। इसी में भगवान से भेंट होती है। इसी में भगवान प्रादुर्भूत होते हैं।

‘जन्मभूमि मन पुरी सुहावनि’, भगवान कहते हैं-मैं यहाँ, इस अवधपुरी में जन्म लेता हूँ। इस शरीर रूपी अवध में। सुग्रीव, अंगद, विभीषण, हनुमान, तुम सब लोग सुनो-यही मेरी सुहावनी जन्म भूमि है। मैं यहीं जन्म लेता हूँ। दूसरी जगह पर भूलकर भी मेरा जन्म नहीं हो सकता। जो अन्यथा मानते हैं, वे गफलत में हैं। मैं अवध के अलावा कहीं और जन्म नहीं लेता। मतलब यह है, कि भगवान अगर किसी को मिलते हैं, तो आत्मा रूप से मनुष्य शरीर में ही मिलते हैं। मानव योनि में ही साधना बन सकती है। साधन धाम मोक्षकर द्वारा-इसे कहा गया है। तो,

‘जन्म भूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि सरजू बह पावनि।’

उत्तर-ऊपर शरीर के अन्दर वह पावन श्वासा रूपी सरजू बह रही है। “जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं वासा।”

तो अगर इस श्वासा रूपी सरजू में कोई अपने मन को मज्जन करा ले, स्नान करा ले - श्वास जप में मन को निमग्न करके उसे निर्मल बना ले - खूब तन्मयता से, अजपा जप करे, तो बिना परिश्रम के मुझ भगवान को प्राप्त कर सकता है। मेरे समीप निवास पा सकता है। परमात्मा में एकाकार हो सकता है। भगवान कहते हैं कि वह मेरे परम पद को, मेरे स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। मेरे जैसा बन जाता है। मेरा जैसा ऐश्वर्य पा जाता है। सारूप्य, सामीप्य, सालोक्य, सायुज्य-इन चारों डिग्रियों को प्राप्त कर लेता है।

आत्मानुभूति की स्थिति जिस शरीर में बनती है, वह महात्मा भगवान का रूप बन जाता है। उसके शरीर के सारे अवयव-और उनकी गतिविधियों में भगवान की अनुकूलता आ जाती है।

तो अब यह जो राम को 14 वर्षों का वनवास था वह पूरा हो गया है। चौदहों अध्यात्मों की-दस इंद्रियों और मन, बुद्धि चित्त, अहंकार, इन चौदहों की - साधना पूरी हो चुकी है। इसके पहले वनवास का कार्यक्रम चलता है, और यह दुर्गुणों (राक्षसों) को नष्ट करने के लिए उपायभूत साधना का स्वरूप होता है। सद्गुणों की विजय हो जाती है, तब इस जीव रूपी विभीषण का उद्धार होता है। यह जो काम, क्रोध, लोभ, मोह के बीच फंसा हुआ है हर आदमी के भीतर, इसको मुक्ति मिल जाती है। इसका कल्याण हो जाता है। परवश से स्ववश हो जाता है। राजा बन जाता

है। ईश्वर का स्वरूप बन जाता है। जीव कोटि उसकी हट जाती है। और जिन्होंने इसको परवश बना लिया था, उन सबको नष्ट कर दिया जाता है। यही साधक का परम ध्येय और साधना का परिणाम है।

तो लंका काण्ड का प्रसंग साधना की छठवीं भूमिका में आता है। जब साधक स्थूल पदार्थों का अभाव करके संकल्प क्षेत्र की प्रक्रियाओं में आकाशवत् रहता है, उस अवस्था को कहते हैं-पदार्थ अभाविनी। अब सातवीं भूमिका-तुर्यगा में प्रवेश कर रहा है साधक। प्रकृति के सर्कुलेशन से ऊपर उठ गया। गुणातीत अवस्था में पहुँच गया। अब साधना का एण्ड (अंत) है यह उत्तर काण्ड। इस अवस्था में सारे प्रश्नों के उत्तर, सारी समस्याओं-शंकाओं का समाधान स्वतः हो जाता है। इसलिए यह उत्तरकाण्ड कहा जाता है। आखिरी है यह। हर साधक को इस मुकाम तक पहुँचना है।

दो.- आवत देखि लोग सब, कृपासिंधु भगवान।

नगर निकट प्रभु प्रेरेउ, उतरेउ भूमि विमान॥

जब जन समूह को राम ने आते हुए देखा, तो विमान से बाले कि विमान अब तुम जमीन पर उतर जाओ, जिससे हम इन सबसे मिल लें। क्योंकि इसके पहले तो आकाश में विलीन रहना पड़ता है। आकाशवत् रहता है। उस अवस्था में पृथ्वी को अर्थात् देहभाव को छोड़ देता है। समाधि में लीन रहता है। वहाँ इनसे मिलना हो नहीं सकता। इसलिए अयोध्या में उतरे। अर्थात् शरीर भाव में धीरे-धीरे उतरे, तो भी अपनी स्थिति में बने रहते हैं। इस शरीर रूपी अवध में जितने सजातीय हैं - जो साधना के सहयोगी तत्व हैं - वे सब अभिनंदन करने के लिए उतावले हो रहे थे। ज्ञान-गुरु, भाव-भरत, सत्संग, शत्रुघ्न, भक्ति-कौशल्या, कर्तव्य-कैकयी, सुमति-सुमित्रा, ये सब और शरीर के सारे अवयव नगर वासियों के रूप में, कृतार्थभाव से राम का प्रीतिपूर्ण दर्शन-अभिनंदन और मेल-मिलाप करके मानो साधक की सफलता को, उसकी पहुँच को प्रमाणित कर रहे हैं। ऐसे तरीके से इसे समझा जाय।

प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपालु खरारी॥

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहिं कृपाला॥

कृपा दृष्टि रघुवीर विलोकी। किए सकल नर नारि विसोकी॥

छन महिं सबहिं मिले भगवाना। उमा मरम यह काहु न जाना॥

अब तुम सोचोगे कि कैसे एक क्षण में सबसे मिल लिए राम। तो अगर बाहर की बात मानोगे इसे, तो यह सही नहीं आएगा। भगवान कोई स्थूल चीज नहीं है। वह निर्लेप, निरवयव, आकाशवत् है। और यहाँ आदमी की सुरति पदार्थ अनुगत

हैं-इसलिए स्थूल दृष्टि से भगवान को भी ले लेता है। भगवान को समझना तब तक संभव ही नहीं है, जब तक सुरति शून्यवत् न हो जाय। उसे जानने के लिए, वही होना पड़ता है।

इसलिए जब कोई महात्मा साधना को सफलीभूत करके अपने स्वरूप में स्थित होता है, तो फिर वह व्यापक भाव लेकर सब शरीरों में उसी स्वरूप को देखता है। वह व्यापक रूप आत्मा का, सबमें है। उसी एकत्व में स्थित हो गए और सबसे मिल लिए इस तरह से-

‘छन महीं सबहिं मिले भगवाना। उमा मरम यह काहु न जाना।।’

ऐसा यह मिलन है, अनुभूति की बात है। एक क्षण में हो गई व्यापकता की अनुभूति। मिलना-जुलना नहीं है वहाँ। वह तो मिला ही है सब में। बाहर जैसे लोग गले मिलते हैं, भेंट करते हैं, तो सब देखने वाले जानते हैं कि ये मिल रहे हैं। लेकिन वहां कहते हैं - उमा मरम यह काहु न जाना। यह मिलना कोई दूसरा देख-जान नहीं पाता। अन्दर ही अन्दर हो जाता है।

तो यह एक जगह नहीं है, रामायण में कई जगह ऐसा दृश्य आता है। जब खर दूषण से युद्ध हुआ तो राम ही राम बन गए थे। सब राक्षस एक दूसरे को राम के रूप में देखने लगे, और आपस में लड़कर मर-मिट गए। ऐसे ही राम-रावण युद्ध के समय रावण ने यह कला की थी कि जितने राक्षस थे वहाँ, वे सब भालू बंदरों को राम-लक्ष्मण की तरह दिखाई पड़ने लगे। तो यह सब समय-समय पर आने वाली साधनात्मक स्थितियाँ हैं।

कृपा सिंधु जब मंदिर गए। पुर नर नारि सुखी सब भए।।

गुरु वशिष्ठ द्विज लिए बोलाई। आजु सुघरी सुदिन समुदाई।।

सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचन्द्र बैठहिं सिंहासन।।

अब राम-राज्य होने जा रहा है। गुरु वशिष्ठ ने ब्राह्मणों को बुलाकर निश्चय कर दिया कि आज शुभ मुहूर्त है, और भगवान को राजगद्दी पर बैठा दिया जाय। अब भगवान के हाथ में अनुशासन दे दिया जाय। इसका मतलब सीधा सा है, तुम्हारी समझ में आ जाना चाहिए। अभी हमारे इस शरीर रूपी अवध का अनुशासन हमारे मन को हमने दे रखा है। इन्द्रियों को दे रखा है। तो अब ज्ञान-गुरु के आदेश से अनुशासन भगवान के हाथ में दे दिया जाय। मन-इंद्रियों से लेकर यह काम भगवान को सौंप दिया जाय। अब हमारा मन जो भी करे, भगवान के आदेश से करे। मन, बुद्धि, चित्त, इन्द्रियाँ सब भगवान के नियंत्रण में काम करें, तो समझो यह मंगल

करने वाला समय अब आ गया। आज से हम यह नियम बना लें, बस यह हमारे अन्दर राम की राजगद्दी हो गई। साधक को भगवान के हाथों में अपना सब कुछ सौंपकर, उसके हाथ की कठपुतली बन जाना है। हृदय की गद्दी उसे समर्पित कर देना है। समर्पण हो जाय पूरी तरह से। हे भगवान ! आज से अब आप मेरे मालिक हैं। जैसे आप चलाएंगे वैसे मैं चलूँगा, जैसे आप रखेंगे वैसे रहूँगा। ऐसी दृढ़ धारणा बन जाय, यह मतलब है भगवान की राजगद्दी का। देखो किस तरह से कहती है मीरा -

‘गिरधर म्हारो सांचो प्रीतम देखत रूप लुभाऊँ।

जो पहिरावे सोई पहरुं, जो दे सोई खाऊँ।

जित बैठावै तित ही बैठूं, बेंचै तो बिक जाऊँ।

इस तरह से जिस साधक का सम्पूर्ण समर्पण हो जाय, जिसका मालिक भगवान हो जाय, जिसके अन्दर राम राजा बनकर बैठ जाय, आत्मा का अनुशासन कायम हो जाय, तो यह रामराज्य कहा जायगा। और बाहर कहीं भगवान राजगद्दी में बैठने नहीं आता। वह तो निर्लेप निरवयव व्यापक तत्व है, सबका आत्मा है, यह तथ्य अगर समझ में नहीं आया, तो साधन-भजन का सही तरीका पकड़ में नहीं आता है।

करि मज्जन प्रभु भूषन साजे। अंग अनंग देखि सत लाजे॥

दो.- सासुन्ह सादर जानकिहिं, मज्जन तुरत कराइ।

दिव्य वसन वर भूषन, अंग अंग सजे बनाइ॥

राम बाम दिसि सोभति, रमा रूप गुन खानि।

देखि मातु सब हरषीं, जन्म सुफल निज जानि॥

माताएं जब सीता को राम के वाम भाग में सुशोभित हुई देखती हैं, तो अपना जन्म सुफल मान लेती हैं। भगवान को पैदा करने वाली भक्ति माता है - कौशल्या। ईश्वरीय कर्तव्य कैकयी, और सुमति सुमित्रा है। तो अब जब साधना पूरी हो गई, परिणाम मिल गया, तो ये सब अपना जन्म सफल मानती हैं। अपने को कृतकृत्य मानती हैं। साधक की भक्ति सफल हो गई। सुमति अर्थात् अच्छी विवेकमयी बुद्धि के द्वारा जो काम होना चाहिए, वह कर लिया गया। तो इनकी सार्थकता सिद्ध हो गई। इसलिए खुश हैं। कैकयी है कर्तव्य परायणता। जो साधक को ईश्वरीय कर्तव्य में लगाती है। राम को तो पहले ही सब लोग राजा बनाए दे रहे थे। यह कैकयी ही थी, जिसने वनवास रूप साधना-पथ पर आरुढ़ करके पूर्णता दिलाई। सबसे ज्यादा कैकयी को महत्व दिया है राम ने - प्रथम तासु गृह गए भवानी। सब अवध-वासी उसे बुरा कहते रहे, लेकिन राम ने हमेशा उसी को ज्यादा माना। तो साधक के

अन्दर जो ईश्वरीय कर्तव्य में साधन भजन में- उसे नियोजित करने वाली भावना होती है उसे कैकयी कहते हैं। इसका महत्व सबसे बड़ा है। अगर यह न होती तो साधक अधूरा रह जाता। साधना अधूरी रह जाती, और राम का काम अधूरा रह जाता। राक्षसों का विनाश न होता। राम जिस क्षमता रूपी सीता के साथ आज विराजमान है, यह उसको कहां से मिलती? यह सीता, उस पहले वाली से बड़ी क्षमता है, जो अग्नि परीक्षा से गुजरने के बाद मिली है राम को यह परिपक्व क्षमता है। यह उपलब्धि साधक को कर्तव्य-परायणता से मिली है। ईश्वरीय कर्तव्य में अर्थात् भजन में डटे रहने से मिली है। राम को इसका एहसास है, कि जो साधना रूप कर्तव्य मेरा आज पूरा हुआ है, उसकी हेतु भूता यही कर्तव्य भावना रूप कैकयी रही है। इसी की प्रेरणा से लक्ष्य की प्राप्ति हुई है। इसलिए राम उसे विशेष सम्मान हमेशा देते हैं।

इस तरह से ये तीनों माताएं - भक्ति, कर्तव्यनिष्ठा और सुमति-साधक के मानस में होती हैं। इनसे ज्ञान, विवेक, भाव और सत्संग ये चारो पैदा होते हैं। ये सब माताएं आज साधक को क्षमतायुक्त देखकर अपने को कृतार्थ मानती हैं; कि हमारा होना सार्थक हो गया। तो माताओं का बाहरी रूप हमें नहीं लेना है। माता का रूप बदलना पड़ेगा, हमें अपने तरीके से। क्योंकि जो लोग भगवान की भक्ति-साधना करना चाहते हैं, उन्हें पारमार्थिक अर्थ लेना पड़ेगा। संसार वाला अर्थ अलग है-व्यावहारिक अर्थ है। जो बताया जा रहा है -यदि समझ में आती है वह धारा तो-उसी में ढलते जाना है धीरे-धीरे। इससे भ्रम दूर हो जायगा। भगवान का सही स्वरूप, सही लीला, सही दर्शन और साधन-भजन का सही तरीका समझ में आ जाएगा और फिर उस तरीके से चलते चलते धाम मिल जायगा-अपना ठौर ठिकाना मिल जाएगा। आत्मा में स्थायित्व मिल जाएगा। मानस का अलौकिक अर्थ खुल जायगा, तो लौकिक से बच जाओगे। और अगर लौकिक-अलौकिक की खिचड़ी पकाओगे - दोनों को पकड़े रहोगे, तो किसी तरफ के न रहोगे। तुम भी वैसे ही बन जाओगे। कहने का मतलब यह है कि राम अलौकिक है, रामायण आलौकिक क्षेत्र की चीज है, गौस्वामी जी कहते हैं कि इस मेरी रामायण में परमात्मा की व्याख्या है। भगवान का ही आद्योपान्त प्रतिपादन हुआ है -

‘यहि महं आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना।।’

भगवान अलौकिक तत्व है - इसलिए रामायण अलौकिक है, और इसे अलौकिक अर्थ में लेना चाहिए। पारमार्थिक अर्थ में लेना चाहिए, लौकिक अर्थ करने से इसके पढ़ने का कोई, लाभ नहीं मिलेगा।

परमात्मा त्रिगुणातीत है। त्रिगुणमयी माया का रूप यह संसार है। तो इस तरह से संसार से-त्रिगुणमयी माया से - वह अलग है। मायातीत है। मन इंद्रियों से परे है, अजन्मा और अविनाशी है।

‘अविगत गोतीतं चरित पुनीतं माया रहित मुकुंदा।’

ऐसा जो भगवान है, उसे अपने अन्तरात्मा में अनुभूतियों से समझा जाता है। वैचारिक ढंग से समझा जाता है। यह ढंग तब बनेगा, जब हम अपने मानस में राम के चरित देख पावें। इस रामायण के अलौकिक अर्थ को ले सकें। गोस्वामी जी ने तो रामायण की कथा में पूरा चित्रण सांसारिक शैली से किया है। राम की उसी तरह से पैदाइस हुई दशरथ कौशिल्या से। संसारी बच्चों की तरह पले-बढ़े, खेले-कूदे, खाए-पिए, पढ़े-लिखे, दोस्ती, दुश्मनी, विवाह, हंसना-रोना सब किया लेकिन इस रूप को खुद गोस्वामी जी नकली कह देते हैं- नट इव चरित करत रघुराया। जैसे नट नाटक में नकली राजा का वेष बना लेता है, लेकिन असली में वह नट ही रहता है-राजा नहीं हो जाता।

‘यथा अनेक रूप धरि, नृत्य करइ नट कोइ।

सोइ सोइ भाव दिखावइ, आपुन होइ न सोइ।।’

तो हम चाहते हैं कि उस नट के स्वांग को देखने के बजाय उस नट को पहिचान लिया जाय। असल को पकड़ा जाय, नकल को छोड़ा जाय। भगवान को क्लियर कट (स्पष्टतया) अलग कर लिया जाय, जिससे दूध का दूध और पानी का पानी अलग हो जाय। तब सही भक्ति की राह मिल जाएगी। और यदि अमसाखमस (घुला मिला) रहेगा, तो समझ में कुछ नहीं आएगा। यह तो गोस्वामी जी ने हमारी तुम्हारी सबकी बुद्धि की कसौटी के लिए यह असल-नकल का घालमेल करके रख दिया है। अब यह नीर-छीर विवेचनी बुद्धि का काम है कि वह सही बात को पकड़ ले। अब देखो, लिखा है कि -

“व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन विगत विनोद।

सो अज प्रेम भगति बस, कौसल्या के गोद।।”

तो राम का जो असली-अलौकिक स्वरूप है-व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुण-वह हमारे इस शरीर रूपी अवध में

निर्लेप आत्मा के रूप में उदीय मान होता है। बाहर लौकिक क्षेत्र में लौकिक माता-पिता, भाई-बहन, स्त्री-पुत्र, सगे-संबंधी सब लौकिक रहेंगे। तौर तरीके सब लौकिक रहेंगे। और जब अलौकिक स्वरूप को प्रादुर्भूत करना है असल से भेंट करना है, तो ये सब वहाँ अलौकिक होंगे। इनके नाम फिर दूसरे होंगे। वहाँ भक्ति माता है, ज्ञान पिता है। क्षमा-दया बहन हैं। विवेक वैराग्य भाई हैं। शान्ति स्त्री है। प्रेम पुत्र है। सरलता, संतोष, सच्चाई ये सारे सद्गुण सगे संबंधी-हितैषी हैं। इस तरह से पारमार्थिक क्षेत्र में इनकी हमें जरूरत है। विनय में कहते हैं गोस्वामी जी -

‘ज्ञान अवधेश गृह गेहिनी भक्ति शुभ,

तत्र अवतार भू भार हर्ता।’

परमात्मा का वास्तविक स्वरूप ज्ञान और भक्ति से प्रकट होता है। ये जब हमारे पास आ जाएंगे तो हमारी गतिविधि सही तरीके से ईश्वरोन्मुख हो जायगी और हमें अपने मुकाम तक ले जायगी। इस शैली से इस रामायण को पारमार्थिक अर्थ में लेना चाहिए। मानस के अर्थ में लेना चाहिए। जो बाहरी अर्थ से लेंगे वे भटक जाएंगे। गोस्वामी जी स्वयं कहते हैं -

‘याही ते मैं हरि ज्ञान गंवायो।

परिहरि हृदय कमल रघुनाथहिं बाहर फिरत मूढ़ मनधायो॥

प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा। तुरत दिव्य सिंहासन मांगा॥

रवि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई॥

जब साधक की साधना पूरी हो जाती है, तब यह राजगद्दी का प्रसंग आता है। साधक के अन्दर जितना माया का प्रसार था वह सब समाप्त हो गया। जो विकार या दुर्गुण अन्दर भरे थे, उन सब राक्षसों को समूल विनष्ट कर दिया गया है, और जिन सद्गुणों के द्वारा इनको समाप्त किया गया, उन बानरों भालुओं का सम्मान किया गया। माया से अनपेक्ष हो गया जब, तो अब परमात्मा में फिक्सेशन (स्थायित्व) पा गया। विशिष्ट ज्ञान को वशिष्ट कहते हैं। उसके आदेश से - उस विज्ञान गुरु के प्रभाव से-सिंहासन पर बैठे राम। दिव्य सिंहासन पर बैठ गए। यह सिंहासन सोने-चांदी वाला नहीं, दिव्य सिंहासन। तो साधक की सुरति रूपी सिंहासन

पर प्रतिष्ठित हो गए। परमात्मा ने हमेशा-हमेशा के लिए सुरति में स्थायित्व ले लिया। अब राम का राज्य रहेगा, किंचिन्मात्र किसी अन्य का प्रवेश उसमें हो नहीं सकेगा। ऐसी अवस्था में जिस महात्मा की पहुंच बनी, उसके तन-मन-बुद्धि सबमें परमात्मा का आवेश छा जाता है। वह परमात्मा मय हो जाता है। यह है राम का राज्य-सर्वत्र एकरस आत्मा की अखण्डानुभूति। उसके अलावा कुछ भी नहीं, सर्वत्र वही एक। ‘सोहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा’ – राम राज्य इसी को कहते हैं।

‘भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला।।’

तो यह है मानस की मंजिल। साधना का परिणाम। परमार्थ की सिद्धि। फलाप्ति, मुक्ति, अमरत्व अथवा आप्त महापुरुषों की रहनी। कुछ भी कहें। इसे लक्ष्य बना लो और भजन के रास्ते पर चल पड़ो। बस रामायण से इतनी सीख लेना है। शंकर स्वरूप संत कहते हैं –

‘उमा कहउं मैं अनुभव अपना। सत हरिभजन जगत सब सपना।।’

यह महापुरुषों की अनुभव युक्त वाणी है। सत्य वाणी है। इसे पकड़ लेना है – कल्याण का मार्ग मिल जाएगा। यह संसार स्वप्न की तरह असत्य है – जब तक यह बात धारणा में दृढ़ता से नहीं बैठ जाती, तब तक ईश्वरीय क्षेत्र में प्रवेश नहीं हो सकता। जब तक संसार की आस्था है मन में, तब तक तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है। इस संसार को पूरी तरह से निर्जीव कर देना है, मन से गायब कर देना है। यह है ही नहीं। होते हुए भी यह है ही नहीं। जैसे प्याज के छिलके निकालते जाओ, उसमें कुछनहीं बचेगा। केले के पत्ते हटाते-हटाते उसमें कुछ नहीं बचेगा। ऐसे ही विवेक बुद्धि से संसार की असारता को देख लेना चाहिए। यह संसार है नहीं, और फिर भी तुम इसका होना पना सिद्ध करते चले जा रहे हो-इसकी नीतियों को आदर्शों को, मर्यादाओं को, पकड़े चले जा रहे हो। ऐसे चलो, ऐसे राम ने किया, ऐसे पिता की आज्ञा का पालन करो। ऐसा अमुक ने किया। यह सब समाज की नीतियां हैं। और समाज का कोई अस्तित्व होता नहीं। व्यक्ति का अस्तित्व है- जीवात्मा है अस्तित्ववान उसी में केन्द्रित रहना है। क्योंकि यह संसार झूठ है, एक्शन- रिएक्शन से बना है। तुम अच्छाई को पकड़ोगे तो झूठ उसका रिएक्शन बुराई को पैदा कर देगा। जो भी बातें आत्मा से भिन्न होती हैं, उनमें रिएक्शन हो जाता है। इसलिए कभी भी संसार की नीति में साधक को नहीं जाना चाहिए। कबीर कहते हैं –

‘लोक वेद कुल की मर्यादा, यहै गले की फांसी।’

अगर संसार की नीति-रीति में फंसे, तो मारे गए। जिसे भजन करना है, उसे संसार से मुंह फेर लेना पड़ेगा। संसार की नीति और आदर्श उस पर लागू नहीं होते। अब देखो शास्त्र कहता है -

‘अनुचित उचित विचार तजि, जे पालहिं पितु बैन।

ते भाजन सुख सुजस के, करहिं अमर पुर ऐन।।’

तो यह संसारी लोगों के लिए है कि माता-पिता की आज्ञा मानना चाहिए। लेकिन साधक का कानून इसके विपरीत है। अगर प्रह्लाद अपने बाप हिरण्यकसिपु की आज्ञा मान लेता तो उसका कल्याण कैसे होता? विभीषण अगर अपने बड़े भाई रावण का कहना मान लेता तो भगवान से नहीं मिल पाता। इसलिए साधक के लिए नीति, लौकिक नहीं अलौकिक बताई जाती है। वही गोस्वामी जी साधकों की नीति बताते हैं कि -

‘जाके प्रिय न राम बैदेही।

तजिए ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही।।

तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बंधु, भरत महतारी।

बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज बनितन भए मुद मंगल कारी।।’

इसलिए जिसने भगवान से रिश्ता जोड़ लिया है, उसे संसार से नाता तोड़ लेना पड़ता है। बाहर शरीर से संसार में रहते हुए भी, मन से उसे छोड़ना पड़ता है। उसका तो केवल परमात्मा से नाता-रिश्ता रह जाता है। मीराबाई की तरह से -

‘मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।

साधु संग बैठ-बैठ, लोक लाज खोई।

भगत देख राजी भई, जगत देख रोई।’

इस तरह से भगवान में लगाव हो जाय, तो संसार छूट जाता है। अलौकिक क्षेत्र में, लौकिक का प्रवेश नहीं होगा। वह अलौकिक अपने अन्दर है। सीधा सा सूत्र है कि उलट कर अन्दर आ जाय। और फिर उधर-बाहरी संसार की तरफ कभी भी न जाये। ‘किले में उलटि लड़ै सो शूर’ - वह बहादुर है। तो हम समेट-समेट कर तुम्हें कहां ले जाना चाहते हैं ? अन्दर। अगर तुम्हें उस खजाने को लूटना है, उस आत्मा के अमृत को पाना है, हमेशा-हमेशा के लिए उस नशे में मग्न होना है, और देश-काल से अबाधित रहना है, तो अपने अन्दर घुसो। चुपचाप गुप्त रूप से घुसो, वहाँ गुप्त है ज्ञान। सद्ग्रंथों का निचोड़ तब तुम्हें मिल जाएगा-अन्दर।

‘सद्ग्रंथ पर्वत कंदरनि मुहुं जाइ तेहि अवसर दुरे।’

सही ज्ञान इस संसार में खोजने पर भी नहीं मिलेगा। क्योंकि यह असत्य है संसार। आत्मा सत्य है। असत्य से हमें मतलब नहीं रखना है। सत्य को पाना है-आत्मा को टच करना है - तो अन्दर घुसना पड़ेगा। उस सत्य को पहिचान कर उसी में अपने को विलीन कर देना पड़ेगा। गायब हो जाना पड़ेगा। डूब जाओ उसी में। फिर इधर को (संसार की ओर) मुंह न करो। साधक का काम है - संजोते क्यों नहीं उसको-अन्दर ही अन्दर ?

**‘हीरा पायो गांठ गठियायो,
बार-बार फिर क्या खोले ?
मन मस्त हुआ फिर क्या
बोले ?’**

फिर उस अनमोल मणि को, उस अपनी प्राप्ति को, सहेज कर रख लेना है। बाहर प्रचार में ले आने और दुनिया को जनाने की चीज वह नहीं है। अगर भगवान को घसीट कर बाहर लाएंगे - अलौकिक को लौकिक क्षेत्र में लाएंगे, तो हम पहुंचते-पहुंचते रह जाएंगे। और अगर हम दुनिया में दिखाना चाहेंगे, कि यह देखो मेरे पास यह मणि है - तो वह कांच की मणि हो जायगी। बाहर आते ही वह असली नहीं रह जायगी। नकली मणि बन जाएगी। सब गड़बड़ हो जाएगा। एक देश की करेंसी, दूसरे देश में नहीं चलेगी। इसे समझने का प्रयास करो। परमात्मा अलौकिक है, उसे लौकिक रूप में लेने से, उसका यथार्थ बोध संभव ही नहीं है। इसलिए परमात्मा का अनुसंधान जिसे करना है, उसे अपने अंतर्जगत में डुबकी लगानी होगी। यह काम करना ही पड़ेगा।

बड़ी विचित्रता है, कि लोग कार्य-कारण के रहस्य को समझते नहीं हैं। कारण कार्य में अनुगत रहता है, परंतु कार्य कारण में अनुगत नहीं रहता। इसलिए कारण ही कारण है। वही तीनों काल में सत्य है। कारण है ईश्वर-आत्मा। वह सत्य है। कार्य रूप यह संसार असत्य है। इस युक्ति को हमेशा याद रखना चाहिए। यह ज्ञान की कुंजी है। जिनको कार्य कारण का यह सिद्धान्त भूल गया, उन्हें बाधा आती है - उनका भ्रम जा नहीं सकता। और न सही रास्ता पकड़ पाएंगे। श्रेय-साधन से वंचित रह जाएंगे। इसलिए सही जानकारी तत्व दर्शी महात्माओं से मिलती है। जो तत्वदर्शी की आवाज है-वह आत्मा की आवाज है। वह वेदवाणी है। राम की वाणी है, कृष्ण की वाणी है, बुद्ध की वाणी है, नानक की वाणी है। यह गीता-रामायण सब हमारे अपने

अन्दर की चीज है। इसकी एडजस्टिंग अपने अन्दर करके उसको फिक्सकर लेना है। जैसे बाल्मीकि के अन्दर फिक्स (स्थायी) हो गया था। व्यास के अन्दर फिक्स हुआ था, बुद्ध के अन्दर, तुलसी और कबीर के अन्दर फिक्स हो गया था। जब सही समझ आ गई, तो जो हम रस्सी को सांप समझ बैठे थे-असत्य को सत्य मान रहे थे-वह सब मामला क्लियर (स्पष्ट) हो जाता है।

अब आजकल वह पहले वाली आध्यात्मिक पृष्ठ भूमिका ही बिगड़ गई, जो ऋषियों मुनियों वाली थी। ज्ञान-ध्यान की सही धारा को लोग पकड़ते नहीं। सब एक तरफ से संसार के प्रवाह में-समाज की बहिर्मुख धारा में, बहे चले जा रहे हैं। भगवान को भी संसार में मनुष्य की रूपरेखा में देखने लगते हैं। जबकि परमात्मा तो सबके अन्दर हृदय गुहा में शयन करते हैं। इसलिए दृष्टि का अन्तर है - समझ का भेद है। कबीर कहते हैं -

‘एक राम दशरथ घर डोलै।

एक राम घट-घट में बोलै।

एक राम का सकल पसारा।

एक राम सब जग से न्यारा।’

तो शुरु में बाहरी कथा कहानी में - रामायण में - राम को राजा दशरथ का लड़का मानते हैं। फिर धीरे-धीरे समझ काम करने लगी, तो उसी राम को अपने आत्मस्वरूप में पकड़ लेते हैं। और साधना की सही प्रक्रिया से चलकर आत्म-बोध प्राप्त करते हैं। फिर व्यापकता लेकर सर्वत्र उसी परमात्म स्वरूप को प्रकाशित हुआ देखते हैं। और निर्लेप एकरस आत्म-स्वरूप में स्थित रहते हैं। राम एक ही है-अवस्था भेद है। और यह निर्गुण अलग और सगुण अलग, ऐसा कुछ नहीं है। परमात्मा एक है, उसके नाम अनेक हैं। चाहे जिस नाम से पुकारो वह सुनेगा।

‘हर देश में तू हर वेश में तू, तेरे नाम अनेक तू एक ही है।’

और परमात्मा से मिलने का रास्ता अपने अन्दर से होकर जाता है - यह निर्विवाद सत्य है। इसलिए हम बार-बार कहते हैं, कि अपने अन्दर घुसो, अन्तर्मुखी हो जाओ। बाहर संसार की दिशा में दौड़ रही है जो तुम्हारी गाड़ी, उसे पैट बदलकर ईश्वर की पटरी पर ले आओ। तब सही लाइन मिल जाएगी और तुम अपनी मूल जगह-अपने गंतव्यस्थानतक पहुँच जाओगे। और नहीं तो देखते रह जाओगे। भूलते-भटकते ऐसी जगह पर पहुँच जाओगे, जहाँ ठिकाना नहीं मिलेगा। इस जगत के जंजाल रूपी जंगल में फँस जाओगे, जहाँ भ्रम रूपी भालू तुम्हें खा जाएगा, संशय

रूपी सर्प इस लेंगे, चिन्तवन रूपी चीते घेरकर मार डालेंगे। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर ये डाकू तुम्हें लूट लेंगे। इनसे बच नहीं पाओगे। इसलिए जब मन में संसार की तरफ से वैराग्य का भाव आवे, तो इसे अपना बड़ाभारी सौभाग्य मानना चाहिए। कभी-कभी पुण्यों के प्रभाव से, आदमी के मन में संसार से घृणा और ईश्वर में अनुराग आता है। बड़े भाग्य से सत्संग मिलता है। और यह मनुष्य का शरीर तो दुर्लभ ही है। इसका लाभ उठाना चाहिए।

संसार के ये सब नाते-रिश्ते, संबंध-व्यवहार, रीति-नीति कुछ हैं नहीं, ये हमारे मान लेने से बन गए हैं। इस झूठी मान्यता को सिरे से खारिज कर देना है और परमात्मा से नाता जोड़ लेना है। भगवान के लिए जो बने, वह करना शुरू करें। नाम जपें, ध्यान करें। इस तरह जब भगवान अच्छा लगने लगेगा और संसार अप्रिय लगने लगेगा, तो समझो अब सही रास्ते पर आ गए। और अगर संसार को ही पकड़े रहे-वही रुचि, वही स्वभाव, वही इच्छाएं, वही क्रियाएं, वही बहिर्मुखता बनी रही, तो जन्मते-मरते रहो। इसके अलावा उपाय ही क्या है ?

संसार के पदार्थ बर्फ हैं, और परमात्मा रूपी पानी है। जब आसक्ति रूपी ठंडक बढ़ जाती है मन के अन्दर, तो वही परमात्मा रूपी पानी बर्फ रूपी संसार में परिणत हो जाता है। लेकिन मूल कारण है पानी और उसी की बर्फ बनी है। तो यह बर्फ कार्य रूप है। कार्य का तीनों काल में अभाव है और कारण तीनों काल में एक रस सत्य है। इसलिए पानी सत्य है और बर्फ असत्य है। असत्य संसार रूप बर्फ को ज्ञान की गर्मी से गलाकर परमात्मा रूप पानी बना लिया जाता है। इतने में है यह सब वेद-शास्त्र और गीता-रामायण। सब अपने ही अन्दर से होता है। बाहर कुछ है नहीं।

आसक्ति मन में पैदा होती है। यह मन ही मय दानव है। यही आसक्ति रूपी लंका बना देता है। यह काया रूपी जो सोने का किला है, इसमें जीव की आसक्ति जब हो जाती है, तो मोह रूपी रावण इसमें राजा बनकर जबरदस्ती बैठ जाता है। यह मनरूपी मय दानव बुद्धिरूपी मंदोदरी को लेकर उस मोह रूपी रावण को सौंप देता है। जब यह बुद्धि मोह के आधीन हो गई तो तमाम दुर्गुण रूपी राक्षस पैदा हो जाते हैं। और इस धड़-धरती के अन्दर अशान्ति और आतंक मचा देते हैं। यह जीवात्मा रूपी विभीषण इसी लंका के अन्दर मोह के अधीन होकर परवश बन जाता है। परमात्मा का रूप है यह जीवात्मा, लेकिन इन काम, क्रोध, लोभ, मोह को अपना परिवार मान लेता है। दांतों के बीच में जैसे जीभ रहती है, इस तरह से

परवश पड़ा रहता है। फिर भी राम-राम जपता रहता है, अपने सत्य स्वरूप को स्मरण करता रहता है। यह दशा हर मनुष्य की हो रही है। और जब किसी के अन्दर ग्लानि आती है कि यह मेरी क्या हालत हो गई है। पूर्व के पुण्य अगर हैं तो अकुलाहट आती है अन्दर। यही है कि -

‘अतिशय देखिधरम कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी।’

तो जब इंद्रियों के देवता, विषय रूपी जहर पीते-पीते, त्राहि-त्राहि करने लगते हैं और भगवान सुन लेते हैं तो रूप बदलने लगता है। आसक्ति रूपी ठंडी से यह जो मोहमय संसार हमारे अन्दर बन गया है, इसे ज्ञान की गर्मी से गलाना है। तो यह मन बदल कर दशरथ का रूप ले लेगा। पहले दसो इंद्रियों से विषय भोग करता था तो दशानन कहलाता था। अब ये इंद्रियां भगवान के अर्थ में लग गईं तो दशरथ का रूप आ गया। भक्ति कौशल्या, कर्तव्य कैकयी और सुमति सुमित्रा मिल गईं। तो ज्ञान रूपी राम और उसके अंग विवेक रूपी लक्ष्मण, भाव-भरत और सत्संग रूपी शत्रुघ्न ये सब आ गए। धीरे-धीरे यह प्रक्रिया आगे बढ़ती चली जाती है और यह रामायण तब पूरी हो जाती है, जब इस मोह रूपी रावण को दल-बल के सहित विनष्ट कर दिया जाता है। इस जीव रूपी विभीषण को राजा बना दिया जाता है। परवश से स्ववश हो जाता है। ईश्वर का रूप ले लेता है। ज्ञान रूप में राम यह काम करता है। उस ज्ञान के आवेश से मोहमय संसार का अंत हो जाता है। इतनी कुल कहानी है। इसी को हम कह देते हैं कि ज्ञान की गर्मी से आसक्ति रूपी ठंडक को हटा दो और इस बर्फ रूपी संसार को गला डालो। परमात्मा रूपी पानीकहीं गया नहीं। वही तो है। और है क्या? एकरस अखण्ड आत्मानुभूति में सुरति लीन हो गई। तो समझो राजगद्दी मिल गई।

इस तरह से यह रामायण-महाभारत सब आध्यात्मिक साधना के प्रतीकात्मक उपाख्यान हैं। बाल्मीकि, व्यास, और उनके भी पहले के अनेक ऋषियों, संतमहात्माओं ने उपनिषदों में और अपने-अपने ग्रंथों में, अपने-अपने साधनात्मक अनुभव इन कथाओं के रूप में लिखे हैं। गोस्वामी जी का राम चरित मानस भी उनकी मानस-साधना का प्रतिरूप है। इसलिए इसको पढ़ने का लाभ तब मिलेगा, जब इसे मानस में लिया जाय और साधना में जुटा जाय। सही सिद्धान्त को मन-बुद्धि में जमा लिया जाय। क्योंकि साधक की राह तो तभी सही मानी जायगी, जब फ्राम स्टार्ट टु फिनिश (आद्योपांत) अपना रास्ता क्लियर (निरापद) कर ले। तब चलने में सुविधा रहेगी। भटकने की संभावना कम रहेगी। अगर बिना सही जानकारी के भक्ति

करोगे, तो नियम विरुद्ध हो गया। कहते हैं - 'जाने बिनु न होय परतीति। बिनु परतीति होय नहीं प्रीति।' मतलब कि बिना ज्ञान के भक्ति नहीं होती। और अगर ऐसे करोगे जैसे आजकल लोग करते हैं, कि रामायण का रोज पाठ कर लिए, मंदिर में धूपदीप कर दिए, और मन ज्यों का त्यों रहा। जैसे का तैसा लोभ, मोह में रहा। तो इसे भक्ति नहीं कहते। भक्ति का मतलब है कि भगवान में प्रेम हो जाय-संसार की आसक्ति छूट जाय।

अग पति राम कथा मैं बरनी। स्वमति विलास त्रास दुख हरनी॥

विरति विवेक भगति दृढ़ करनी। मोह नदी कहुं सुन्दर तरनी॥

अब जब राम का राज्याभिषेक हो गया, परमात्मा को हमेशा के लिए सुरति रूपी सिंहासन पर बैठा लिया गया। एक रसता आ गई। सर्वत्र एक रस व्याप्त अनंत अखण्ड परमात्मा में स्थिति मिल गई, तो साधना शेष हो गई। अब यहाँ से रामकथा पूरी हो गई। अब रामराज्य हो गया। साधक के अन्तःकरण में आत्मा का प्रकाश आ गया। अब काम पूरा हुआ-अब उसका नाम-काम सब दूसरे हो जाएंगे। उसे महात्मा कहो, संत कहो, राजा कहो, भगवान कहो, सब ठीक है। वेदों ने स्तुति किया-इसका मतलब है कि यही वह अवस्था है, जो वेदों में मोक्ष पद, ब्रह्मपद आदि अनेक नामों से वर्णन की गई है। स्तुति का मतलब है कि यह वेद-वाणी द्वारा प्रमाणित किया जा रहा है। शंकर जी ने स्तुति किया। संत को शंकर कहते हैं। संतों के द्वारा जिस परमात्मपद को मान्यता दी गई है, वह यही अवस्था है। यह अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति है। अन्तिम सत्य यही है। यहां पहुंचने के बाद रामायण पूरी हुई। इसलिए गोस्वामी जी काग भुसुंडि के मुंह से कहला देते हैं कि हे गरुड़! मैंने पूरी रामकथा तुम्हें सुना दिया। परिणाम आ जाने के बाद अब रामकथा रूपी साधन-प्रक्रिया समाप्त हो गई। अब राम राज्य हो गया। राम राज्य का मतलब प्राप्ति वाले संत महापुरुषों की रहनी, उनकी आन्तरिक स्थिति कैसी होती है, उसका निरूपण किया जायगा। शुरू से आखीर तक की साधना प्रक्रिया को रामकथा के रूप में यहां तक बता दिया गया और अब वह कोर्स पूरा हुआ। यह साधना रूपी रामकथा क्या परिणाम देती है। पहिले अनुराग, वैराग्य, विवेक को दृढ़ करती है। और इनकी सहायता से मोह को नष्ट कर देती है। इसलिए साधना वही मानी जायगी कि हमारे मन से संसार की मोहासक्ति निकल जाय। तब यह जीवात्मा-विभीषण, परमात्मा की शरण में जाकर मुक्त हो जाता है।

अनुज राज संपति वैदेही। देह गेह परिवार सनेही॥

सब मम प्रिय नहिं तुमहिं समाना। मृषा न कहउं मोर यह बाना॥

सबके प्रिय सेवक यह नीती। मोरे अधिक दास पर प्रीती।।

दो.- अब गृह जाहु सखा मम, भजेहु मोहिं दृढ़ नेम।

सदा सर्व गत सर्वहित, जानि करेहु अति प्रेम।।

साधक पहले अविद्या जनित दुर्गुणों से ग्रस्त रहता है। उसका अन्तःकरण काम, क्रोध, लोभ, मोह से आच्छादित रहता है। फिर जब साधन करने लगता है, तो सद्गुणों का संग्रह करता है - यह सब बानरी सेना खड़ी करता है। और उसके प्रभाव से, उस अविद्याकृत विजातीय समूह का विनाश कर डालता है। तो जब सद्गुणों द्वारा दुर्गुणों का विनाश हो जाता है, तब यह परम उत्सव उस समय होता है, जब साधना का अंत आ जाता है। सद्गुण समूह का सम्मान करते हैं, तारीफ करते हैं और उन्हें दान, अनुदान, उपहारों से तृप्त करते हैं। उन्हें संतुष्ट और प्रसन्न करके बिदा करते हैं। क्योंकि यह प्रकृति का स्वाभाविक नियम बना हुआ है कि अगर सद्गुणों को अपने पास रखा जायगा, तो दुर्गुण पुनः पैदा हो जाएंगे। ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। रात के बिना दिन हो नहीं सकता। दिन न हो तो रात का ज्ञान होगा ही नहीं। इसे अन्योन्याश्रय का सिद्धान्त कहते हैं। यही संसार की धुरी है। इसी पर यह दुनिया टिकी है। इससे बाहर होने पर ही मुक्त हुआ जा सकता है। तो महात्माओं ने यह युक्ति निकाली कि दोनों का त्याग कर दिया जाय और प्रकृति के सर्कुलेशन से बाहर निकल जायं। पहले विद्या से अविद्या को हटा दिया जाय और फिर विद्या से भी हाथ जोड़ लिया जाय। अगर विद्या को रख लिया जायगा तो जो चली गई थी अविद्या, वह फिर आ जायगी।

अब जैसे कोई बहुत बड़ा पराक्रमी, धनवान, वैभवशाली है, तो इसका उसे अहंकार होगा - मैं ऐसा हूँ, मैंने यह किया। अब मान लो उसने सब त्याग कर दिया। तो त्याग के साथ ही उसके अन्दर शुद्ध अहंकार पैदा हो जाएगा कि मैंने इतना बड़ा त्याग किया। तो पहले अशुद्ध अहंकार था-लोहे की जंजीर। अब त्याग का अहंकार-सोने की जंजीर (महारावण)। बंधा तो है ही। इसलिए इस अन्योन्याश्रय दोष से बचने का एक ही तरीका है कि जब अच्छाई के द्वारा बुराई को समाप्त कर दिया जाय। अब अच्छाई रह गई अपने पास। तो जल्दी से जल्दी उस अच्छाई को भी विदाकर दिया जाय।

‘त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक’

दोनों का त्याग करना है। गुण-दोष, अच्छा-बुरा दोनों माया हैं। माया के दो रूप हैं। विद्यामाया और अविद्या माया।

हैं तो दोनों माया ही। इसलिए महात्माओं के द्वारा गुण-दोष दोनों का परित्याग कर दिया जाता है। तब माया से पीछा छूटता है।

‘सुनहु तात मायाकृत, गुन अरु दोष अनेक।

गुन यह उभय न देखिए, देखिय सो अविवेक।।’

सद्गुणों को इसलिए पाला जाता है - साधक इन्हें साधना में इसलिए लेते हैं - कि इनकी सहायता से दुर्गुणों को मिटाया जाता है। और जब दुर्गुण हट गए तो सद्गुणों को पाल रखने का कोई मतलब नहीं रह गया। अगर इनमें आसक्ति हो गई तो यह बंधन बन जाएगी। इसलिए राम, अब काम पूरा होने के बाद बंदरों को बिदा कर रहे हैं। कोई बंदर जाना नहीं चाहता, लेकिन राम उन्हें आग्रह पूर्वक विदा कर देते हैं।

अंगद ने बहुत विनय किया। अनुराग है अंगद। साधना में इसका बहुत बड़ा महत्व है। साधना पूरी होने पर उसे भी अपने पास नहीं रखते हैं। अंगद को भी विदा कर दिया।

तो साधक जब तक साधनारत रहता है, तब तक उसके लिए सद्गुण, सद्गुण हैं, और दुर्गुण, दुर्गुण हैं। जब साधना पूरी हो गई और स्वरूप में स्थित हो गया, तो अभेद आ जाता है। समत्व आ जाता है। महात्मा की यह पहिचान है - ‘सम मान निरादर आदर ही।’ ‘नहिं राग न रोस न मान मदा। तिन्ह के सम वैभव वा विपदा।’

उसके लिए अच्छा-बुरा, सुख-दुख, निन्दा-स्तुति दोनों समान हैं - यह अवस्था ही परम-पद या परमात्म पद कहलाती है। भगवान का धाम इसे कहते हैं। इसलिए समत्व में स्थिति प्राप्त संत महापुरुष को भगवान कहा जाता है। ‘जानेहु संत अनंत समाना।’ ‘संत भगवंत अंतर निरंतर नहीं।’ क्योंकि भगवान के यहाँ बुरा-भला सब बराबर है। देखते हो जो भी राक्षस मरता गया भगवान उसे अपना धाम दे देते हैं।

‘निशिचर अधम मलाकर ताहि दीन्ह निज धाम।’

तो मलाकर हो चाहे गुणाकर हो, भोगी हो चाहे योगी हो - भगवान एक ऐसी जगह का नाम है, जहाँ ये सब समाहित हो जाते हैं। और जो ये विष्णु भगवान देवताओं की तरफ से खड़े रहते हैं - यह सत्य पक्षधर है। यह उससे पहिले की श्रेणी का है। भगवान की तीन कोटियां हैं। लोवर (निम्न) स्तर में उसे जीवात्मा कहते हैं। जीवात्मा अविद्या क्षेत्र में रहता है। फिर हायर (उच्च) स्तर पर - जब अविद्या से छूट कर विद्या के क्षेत्र में पहुँच जाता है तब - उसे ईश्वरात्मा कहते हैं। यह ईश्वरात्मा ही विष्णु है। और विद्या-अविद्या दोनों से परे, निर्लेप एकरस स्थिति में वह परमात्मा

कहा जाता है। है भगवान वही एक। अलग-अलग अवस्थाएं हैं। उसकी ये उपाधियां हैं। परमात्मा से अतिरिक्त कुछ है नहीं। वही सर्वत्र परिपूर्ण है। उसमें अभेद रहता है। 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' - एकमेवाद्वितीयम्', ऐसा है। इसलिए वहीं सब जाएंगे, उससे बाहर जा नहीं सकते-चाहे जो जैसा हो-उसी में रहेगा। ऐसा मतलब है इसका। उसमें छोड़ना ग्रहण करना, ये क्रियाएं नहीं होतीं। यह तो नाटक बाहरी दुनिया के ढंग से बना दिया गया है, वह परमात्मा तो निष्क्रिय है। हलन-चलन से रहित निस्पंद स्तंभवत, एकरस, सर्वत्र परिपूर्ण है। वह, सबमें होते हुए भी सबसे अलग है। सब कुछ करते हुए भी कुछ नहीं करता।

‘व्यापक व्याप्य अखण्ड अनंता।

अनुभव गम्य भजहिं जेहि संता।।’

उसे वाणी का विषय नहीं बनाया जा सकता। अनुभव किया जा सकता है। इसलिए वेद उसके विषय में नेति-नेति कहते हैं। सद्ग्रंथ उसे ज्ञान गिरा गोतीतं’ बताते हैं, शास्त्र उसे अनिर्वचनीय कहते हैं। वह राम की स्थिति है। अब वहां अच्छाई-बुराई कुछ नहीं रहेगी। ऐसा यह प्रसंग, साधना की अंतिम अवस्था का है। सातवीं भूमिका (तुर्पगा) में साधक को अपने लक्ष्य की प्राप्ति होती है। परिणाम मिल जाता है। साधना अब यहाँ से समाप्त होती है। सातवां कांड-सातवीं भूमिका यह अंतिम है। परमात्मा को सिंहासन दे दिया और अपने को जो कुछ मिला, अर्पण किया गया। समर्पण किया गया। राम-परमात्मा के हाथ में शासन सौंप दिया गया। अब सद्गुण समूह का भी त्याग करके असंग हो गए, निर्लेप आकाशवत रहनी मिल गई।

अति आदर सब कपि पहुँचाए। भाइन्ह सहित भरत पुनि आए।।

तब सुग्रीव चरन गहि नाना। भांति विनय कीन्हे हनुमाना।।

दस दिन करि रघुपति पद सेवा। पुनि तव चरन देखिहउं देवा।।

पुण्य पुंज तुम्ह पवन कुमार। सेवहु जाइ कृपा आगरा।।

देखिए, सब बन्दर भालुओं का - सद्गुण समूह का - त्याग किया, लेकिन वैराग्य रूप हनुमान का त्याग नहीं किया। महात्मा पूर्णता के बाद भी वैराग्य का त्याग नहीं करते हैं। क्यों नहीं करते, क्योंकि वैराग्य से सुरक्षा रहती है। इसके बिना काम नहीं चलेगा। कहीं कोई अटैक (आक्रमण) आ जाय तो वैराग्य ही बचाएगा। वैराग्य रूप हनुमान ही रक्षा करेगा। इसलिए -

‘राम दुआरे तुम रखवारे। होत न अज्ञा बिनु पैसारे।।’

हनुमान के रहते कोई दिक्कत आ नहीं सकती। वैराग्य रूपी हनुमान के बिना महात्मा नहीं रहेगा - महात्मा नहीं कहा जायगा, बिना वैराग्य। इसलिए जो सबसे मजबूत हथियार है, महात्मा का रक्षा - कवच है, वह है वैराग्य। उसका त्याग नहीं किया जाता। हनुमान त्याग का रूप ही है, उसे तो रखना पड़ता है। अगर यह त्याग-वैराग्य न रहे, तो महात्मा किस बात का है। यह अभिन्न तत्व है, महात्मा उसे हमेशा अपने पास रखता है, वैराग्य जरूर रहना चाहिए।

इसलिए राम ने हनुमान का त्याग नहीं किया, और सबका त्याग कर दिया। तो यह पराकाष्ठा है साधना की। और साधना के बाद जो स्थिति आती है, वह इसको लिए हुए रहती है। अगर वैराग्य न रहेगा तो हम आकाशवत् रहनी में कैसे स्थित रह पाएंगे। वहाँ तो संकल्पों की वेब (तरंगें) टकराती ही रहती हैं। कोई एक संकल्प आया - यह एक तरंग इधर आई। उधर वह आई दूसरी। इनसे अपने को बचालेने का नाम है वैराग्य। इसलिए वैराग्य तो स्वभाव बन चुका है, अपना गुण-धर्म बन चुका है। भगवान के ऐश्वर्यों में है वैराग्य। उसे वह छोड़ नहीं सकता। इस तरह से राम ने हनुमान का परित्याग नहीं किया। हनुमान सुग्रीव का मंत्री था। सुरति को सुग्रीव कहते हैं। सुरति को भगवान से जोड़ने का काम इसी वैराग्य का है। हनुमान ने ही सुग्रीव और राम की मित्रता कराई थी -

‘पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ।’

तो अपने मालिक सुग्रीव के पैरों पर गिरकर अनुनय विनय पूर्वक आज्ञा लिया, और राम की सेवा में वहीं रह गया अवध में। यहीं इस शरीर के अन्दर सब चरित होते हैं। साधक के मानस की बातें हैं। वहाँ कोई कहीं आया गया नहीं है। यह गुप्त रूप से अपने अंदर चरित होते हैं। किसी भाग्यशाली को संत-सतगुरु स्वरूप शंकर से ही यह रामचरित का गुप्त रहस्य मिलता है -

‘राम चरित सर गुप्त सुहावा। शंभु प्रसाद तात मैं पावा।।’

तो मतलब इतना है, कि साधक को साधनाकाल में सब सजातीय तत्वों को साथ रखना पड़ता है। साधना की पूर्णता में इनका काम नहीं रह जाता। केवल वैराग्य को लिए रहना जरूरी होता है।

दो.- कुलिसहु चाहि कठेर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।

चित्त खगेस राम कर, समुझि परइ कहु काहि।।

पुनि कृपालु लियो बोलिनिषादा। दीन्हें भूषन बसन प्रसादा।।

जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू॥

यह पहिचान है भगवान की, कि उसमें दोनों धर्म एक साथ दिखाई पड़ते हैं। वह वज्र से ज्यादा कठोर और फूल से भी ज्यादा कोमल होता है। आत्मा में कठोरता-कोमलता कुछ होती नहीं है, उस में यह क्षमता है कि सबको समाहित किए हुए है। न कठोरता उससे अलग होकर रह सकती है, न कोमलता उससे अलग होकर रह सकती है। वही सबका आश्रय है। इसे कुछ विद्वान भगवान की विरुद्धधर्माश्रयताकहते हैं। दो विरोधी गुण-धर्म एक साथ भगवान में ही रह सकते हैं। अच्छ-बुरा सबका आश्रय स्थान वही है।

अब राम गुह को बुलाकर उसे भी विदा करते हैं। गुह कहते हैं - पूर्व पुण्यों को। ये गुप्त रहते हैं। ये पुण्य साधक की मूल पूंजी है, जिससे उसका साधन-भजन रूपी व्यवसाय शुरू होता है। फिर धीरे-धीरे इसे बढ़ाता जाय, तो पूंजी बन जाती है, धंधा व्यापार बढ़ जाता है और पुण्य ही पुण्य से भर जाता है, और धनवान हो जाता है। साधक की साधना में, पूर्व पुण्य ही आधार बनता है। वन थर्ड (एक तिहाई) पूर्व के पुण्य, वन थर्ड (एक तिहाई) साधक की मेहनत, और वनथर्ड गुरु की कृपा। इन तीनों से साधना बनती है। इसके बगैर काम नहीं बनेगा।

‘पुण्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता॥’

तो साधना काल में पुण्य रूपी इस निषादराज की जरूरत है। पूर्णता के बाद तो महापुरुष पुण्य का रूप ही बन जाता है। अब उसे पाप-पुण्य किसी से कुछ लेना-देना ही नहीं रह गया। गुह को विदा करने का मतलब है कि अब पूर्व पुण्यों की उपयोगिता नहीं रह गई। अब काम रह नहीं गया उसका। ऐसा भी है कि उस स्थिति में सब अच्छे-बुरे संस्कारों का उच्छेद हो जाता है।

राम राज्य होने के बाद इन सबको बिदा कर दिया गया। तो साधक को चाहिए कि साधना में लगन करे। अपने अन्दर से दुर्गुणों को हटाता जाय, सद्गुणों को ग्रहण करता जाय। करते-करते एक दिन ऐसा आएगा कि इन दुर्गुणों का नामोनिशान नहीं रह जाएगा। और सद्गुण ही सद्गुण आ जाएंगे। तबफिर सद्गुणों को भी छोड़ देना चाहिए। अगर नहीं छोड़ा जाएगा तो यही बंधन बन जाएंगे। पहले दुर्गुण समूह से बंधे थे- अपवित्रता से बंधे थे। अब पवित्रता से बंध जाएंगे। ये सद्गुण रूपी देवता भी बेईमानी तो करेंगे ही। ये भी वही सब करते हैं, स्वर्ग में बैठे बैठे भोग-विलास करते हैं, स्वर्ग में अप्सराओं के नाच गान करते हैं। बदमाशी करते हैं - तो दुर्गुण रूपी दानव पैदा कर देते हैं। फिर जब बढ़ गए दानव, तो त्राहि-त्राहि करते हैं। तब फिर

भगवान जन्म लेकर इनका कल्याण करते हैं। यही परम्परा है। इसलिए इन्हें रखना नहीं है, अपने पास। सद्गुणों का काम दुर्गुणों को भगाने तक है। इसके बाद इनका त्याग करना ही ठीक है।

दो.- राम राज नमगेश सुनु सचराचर जग माहिं।

काल कर्म सुभाव गुन, कृत दुख काहुहिं नाहिं॥

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला॥

भुवन अनेक रोम प्रति जासू। यह महिमा कछु बहुत न तासू॥

सो महिमा बरनत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी॥

राम राज्य का मतलब है कि आत्मा का प्रकाश साधक में हो जाय, आत्म-स्वरूप में स्थिति मिल जाय। आत्मा का अनुशासन कायम हो जाय। बाहर की दुनिया में ऐसा नहीं होता कि वह काल-अबाधित हो जाय। काल अबाधित केवल परमात्मा है। उसमें काल, कर्म, स्वभाव, गुण का प्रभाव नहीं रहता। इसलिए किसी साधक की साधना जब परिपक्व अवस्था में पहुँच जाती है और स्वरूप में स्थिति मिल जाती है - तब उसे कहते हैं राम राज्य। फिर वह काल, कर्म, स्वभाव और गुण - इनके दायरे से ऊपर उठ जाता है। माया से मुक्त हो जाता है। जीव धर्म से मुक्त हो जाता है। निर्मल आत्मा का स्वरूप जो पहले माया से आच्छादित रहता है, वह स्पष्ट हो जाता है। यही काल, कर्म, स्वभाव और गुण उसे घेरे रहते हैं पहले, तब वह जीव कहलाता है। यही तो माया है। यही बंधन है।

‘फिरइ सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥’

साधना के द्वारा इनके घेरे से छूट कर बंधन मुक्त हो जाता है। आत्मा का स्वरूप काल अबाधित है। वह परमात्मा तीनों काल में एकरस रहता है। स्वरूप को चीन्ह लेने पर कर्म का पूरी तरह से निरास हो जाता है। फिर उस महात्मा के लिए कोई कर्म शेष नहीं रह जाता। ‘कर्म कि होंहिं स्वरूपहिं चीन्हें।’

स्थिति-प्राप्त महापुरुष सब कुछ करते हुए भी कुछ नहीं करता।

बिनु पग चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै विधि नाना॥

आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बक्ता बड़ जोगी॥’

वह चलते हुए चलता नहीं, खाते हुए खाता नहीं, बोलते हुए बोलता नहीं, हंसते हुए हंसता नहीं - ऐसी निर्लेप रहनी वाला महात्मा जब हो जाता है, तब उसके अन्दर राम राज्य आ जाता है। निर्गुण, निर्लेप अवस्था ऐसी होती है, कि फिर संसार

नहीं रह जाता, संसार गत स्वभाव नहीं रह जाता। हमेशा-हमेशा के लिए संसार से छुट्टी मिल जाती है। रामराज्य हो जाता है।

तो यह ऐसे ही नहीं हो जाता। इसके लिए पूरी रामायण रचनी पड़ती है। साधना करनी पड़ती है। सबसे पहिले इस शरीर के अंदर आसक्ति रूपी लंका में मोह रूपी रावण आकर बैठ जाता है। जीव रूपी विभीषण की दुर्गति किए रहता है। काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि राक्षसों का बोलबाला रहता है। फिर जब अशान्ति छा गई और अन्दर से अकुलाहट पैदा हुई - 'भई समीत धरा अकुलानी।' तब चिल्लाहट मची तो अन्दर भगवान आ जाते हैं। धीरे-धीरे पालते पोसते रहे, भजन-साधन चलता रहा - और जब विश्वास रूपी विश्वामित्र आया, तो तर्कना रूपी ताड़का और स्वभाव रूपी सुबाहु मिटा दिये जाते हैं। मन-मारीच का रूपांतरण हो गया। फिर योग रूप जनक के यहां शक्ति-सीता मिल गई। फिर और गहरी साधना हुई वनवास के रूप में प्रगति होती गई और फिर सीता-शक्ति को लगाया अन्दर के राक्षसों का हनन करने में सीता रूपी यह शक्तिवाण चला दिया गया। तो सब एक-एक करके मरते गए। फिर जब सब मर गए तो जीवात्मा विभीषण जो शरणागत हुआ था - राजा बना दिया गया। भगवान का रूप हो गया। जीव से ब्रह्म हो गया -परवश जीव स्ववश भगवंता। और सीता के रूप में जो शक्ति वाण चलाया गया था, वह अपना काम करके वापस आ गया अपने पास। तरकश में प्रवेश कर गया। अग्नि परीक्षा से होकर सीता फिर से राम के पास आ गई। बस काम पूरा हो गया। साधना पूरी हो गई। राजगद्दी हो गई। राम राज्य हो गया। भगवान का राज्य हो गया। माया का राज्य जो था अभी तक साधक के अन्दर, उसे खत्म कर दिया गया। स्वरूप में जागृति मिल गई। राम का पद मिल गया। अब वहाँ काल, कर्म, स्वभाव, गुण, सबसे परे की अवस्था में इन माया के पायकों की दाल कहाँ गलेगी? ऐसे उस राम राज्य में ये चारो नहीं रह जाएंगे। इनका किया हुआ, वहाँ कुछ होता नहीं। उसका नाम है - रामराज्य।

अब उस राम राज्य का उपभोग करिए और मस्ती काटिए। उसी अनुभूति के नशे में झूमते रहिए। आकाशवत रहनी मिल गई।

‘छड़बो छड़बो हो फकीरवागगन कुटिया।

आसन मारि मगन है बैठे, ध्यान धरै लौके तिरकुटिया।।’

बस अपने स्वरूप में एडजस्ट हैं, उसी में तन्मय हैं। उससे इधर-उधर होना नहीं है। अब वहाँ दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों ताप नहीं रहेंगे, न विषमता रहेगी, न दुःख, न

द्वेष, नभय, न शोक ये सब भगवान में नहीं होते । तो उस परमात्म तत्व में स्थित होने का नाम है – राम राज्य। बाहर कहीं किसी भूखण्ड में ऐसा हो नहीं सकता कि काल, कर्म, स्वभाव और गुणों से अतीत व्यवस्था कायम हो जाय। गुणातीत केवल परमात्मा है। आत्मा है काल-कर्म से अतीत। संसार में सर्वत्र त्रिगुणात्मिका माया ही माया है। इसलिए यह किसी साधक के अन्दर उपलब्धि के अनंतर निर्लेप अवस्था का चित्रण यहां राम राज्य के रूप में किया गया है। यह विज्ञानी महात्माओं वाला अर्थ है। यह वेदमत वाला अर्थ है। यह साधकों के लिए है। लोकमत वाला अर्थ संसारी समाज के लिए किया जाता है। साधना करने वाले की दुनिया उलटकर उसके अन्दर आ जाती है। ‘उल्टा चलै सो औलिया, सीधा सब संसार’

इसलिए बाहर के बजाय यह राम चरित अपने मानस में लेना चाहिए।

दुइ सुत सुंदर सीता जाए। लवकुश वेद पुराणन गाए॥

दोउ विजयी बिनयी गुन मंदिर। हरि प्रतिबिम्ब मनहुं – अति सुन्दर॥

वाल्मीकि जी ने अपनी रामायण में लवकुश काण्ड भी लिया है, आठ काण्ड हैं उसमें। गोस्वामी जी ने इसे नहीं लिया। बस यहां पर इतना संकेत दिया है कि सीता से लव और कुश नाम के दो पुत्र हुए। तो वाल्मीकि ने इतिहास का रूप लिया है। वाल्मीकि रामायण को विद्वान लोग इतिहास ग्रंथ मानते हैं। गोस्वामी जी के राम चरित मानस में धार्मिक रूप रेखा को लिया गया है, और इसे ठोस आध्यात्मिक आधार दे दिया गया है। सीता निर्वासन का प्रसंग उन्होंने लिखा ही नहीं। इस तरह से उनके राम चरित मानस में सात काण्ड हैं।

जिन्हें स्वयं गोस्वामी जी ने ईश्वरीय साधना की मंजिल को पाने के लिए सात सोपान या सीढ़ियां कहा है-

‘यहि महं रुचिर सप्त सोपाना।

रघुपति भगति केर पंथाना॥’

इस तरह से गोस्वामी जी का दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से पूरी तरह साधनात्मक रहा है। अन्तर्जगत की साधना को इसमें लिया गया है। इसलिए उन्होंने इसे ‘राम चरित मानस’ नाम दिया गया है।

तो लवकुश के कथानक को आध्यात्मिक रूपरेखा में इस तरह से लेना चाहिए कि अपने अन्दर जब रावण को मार दिया गया, बुराई सब निकल गई, सद्गुण रूप बंदरों का त्यागकर दिया। त्याग का भी अहंकार होता है – यह शुद्ध अहंकार है। तो अहंकारी का सिर-नीचा। फिर शक्ति का त्याग करना पड़ा। और जब शक्ति का त्याग

हुआ, तो फिर वहां लव और कुश। एक भयानक लगन लगी। त्याग का मिशन साधक को प्रोग्रेस देता है। उन्नति देता है, त्याग हुआ, तो लगन लगी ईश्वर में। और गहराई से लगन लगी, और गहरी लगन। और फोर्स के साथ लगे। तब फिर जाकर वह स्थिति बनी। वह अशुक्ल, अकृष्ण कर्मों की स्थिति। फिर बिना कर्म किये ही, किसी चीज़ को दे सकता है। तुममें नहीं करने की क्षमता है, तो भी वह संभाल सकता है। ऐसे अशुक्ल और अकृष्ण दो प्रकार के जो कर्म हैं, उसके प्रतीक ये लव और कुश हैं। दोनों योगी के हृदय में आते हैं। जब महाप्राणाष्टक की योग्यता को प्राप्त करके, योगी त्याग कर देता है। रिद्धियां-सिद्धियां सब का त्याग कर देता है। त्याग का त्याग कर देता है। डिग्री आई डिग्री का त्याग कर देता है। ब्रह्म आया, उसका भी त्याग कर देता है। तब जाकर ये अशुक्ल और अकृष्ण, ये लव और कुश मिलते हैं। ये भरत, शत्रुघ्न, हनुमान, लक्ष्मण सब को मूर्छित कर देते हैं। ये सब डिग्रियां साधक को जो पहले मिलती हैं, उसके बाद जो त्याग का त्याग करने के बाद, विटो (विशेषाधिकार) और विल पावर (इच्छाशक्ति) मिलता है, वह बहुत तगड़ा होता है। उसके सामने डट नहीं सकता कोई। राम जब आये सामने तो इतने में ऋषि आ गये, तो बच गये। इस तरीके से भजनकरते-करते, भजन का त्याग कर दे। फिर भजन करता चले। फिर मन बदल कर गरुड़ बन जाय-और इसका त्याग कर दें। फिर भजन करे, फिर इन्द्रियां नव निधि और अष्ट सिद्धि बन जायं, फिर उनका त्याग कर दे, और फिर भजन करता जाय। इस तरह उत्तरोत्तर ताकत बढ़ती जायगी और योग्यता बहुत ऊंची हो जायगी। इस प्रकार वह पीछे वालों से बहुत आगे निकल जायेगा। इसी को बताते हैं, कि डिग्री फिर इससे ऊपर नहीं है। जैसे जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्या, तुर्यातीत, अतीतातीत ऐसे डिग्रियां उत्तरोत्तर मिलती जाती हैं। ऐसी स्थिति के प्रतीक हैं, लव और कुश। जो कुछ नहीं है, वह सब कुछ है। और जो सब कुछ है, वह कुछ नहीं- ऐसी जब कला आ जाती है। जो सब कुछ को, न कुछ कर दे-यह अशुक्ल है। और जो कुछ नहीं को, सब कुछ करदे, वह अकृष्ण है। ऐसी जब कला आ जाती है। वही योग्यता लव और कुश हैं।

जब ते राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा॥

पूरि प्रकाश रहेउ तिहुं लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतेन्ह मन सोका॥

जिन्हहिं सोक ते कहहुं बखानी। प्रथम अविद्या निसा सिरानी॥

अघ उलूक जहं तहां लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने॥

विविध कर्म गुन काल सुभाऊ। ए चकोर सुख लहंहिं न काऊ॥

मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहुं ओरा।।

धरम तड़ाग ज्ञान विज्ञान। ए पंकज विकसे विधि नाना।।

सुख संतोष विराग विवेका। विगत सोक ए कोक अनेका।।

दो.- यह प्रताप रवि जाके, उर जब करइ प्रकास।

पछिले बाढ़हिं प्रथम जे, कहे ते पावहिं नास।।

‘यह प्रताप रवि जाके उर जब करइ प्रकाश।’ यह सूर्य नहीं जो रोज सुबह निकलता है, शाम को ढलता है। वह राम के प्रताप का सूर्य। वह परमात्मा का प्रकाश-जब जिसके हृदय में आत्मिक प्रकाश आता है। आत्मिक अनुभूति जो कर पाता है, उसके अन्तर्जगत में वह सब होता है जो यहाँ लिखा गया है। यह परमात्मा के प्रताप का सूर्य है, बाहर वाला सूर्य नहीं। वह तो आत्मिक अनुभव के रूप में उस भाग्यशाली के हृदयाकाश में उदीयमान होता है, जो उसके लिए जीवन अर्पित करता है, मेहनत करता है, लगन करता है और अपने आप को विलीन कर देता है।

तो देखना चाहिए कि गोस्वामी जी बाहर किसी भौतिक रामराज्य की बात नहीं करते हैं। आन्तरिक रामराज्य की बात है। ‘उर जब करै प्रकाश।’ जब परमात्मा राम का प्रभावजिस किसी के हृदय में छा जाता है-आत्मा का आवेश जिसके अन्दर आ जाता है। ‘पूरि प्रकाश रहेउ तिहुं लोका।’ तीनों लोको में प्रकाश छा जाता है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों शरीरों में उसकी आभा दिखाई देने लगती है। उस महात्मा की आत्म ज्योति का प्रभाव उसके शरीर में बाहर झलकने लगता है। मुख मंडल में तेज की किरणें फूटने लगती हैं। शरीर के अंग प्रत्यंग में आभा आ जाती है। उसे देखने के लिए लोग लालायित हो उठते हैं। राम और कृष्ण को लोग देखते ही रह जाते थे। उसका अन्तःकरण निर्मल और आत्मा सबल हो जाती है। वाणी में प्रभाव आ जाता है। उस महात्मा की स्थिति ऐसी होती है कि उसकी अविद्या रूपी रात्रि समाप्त हो जाती है। सदा सदा के लिए उसे अविद्या से छुटकारा मिल जाता है।

बिना आत्मिक प्रकाश के यह अविद्या रूपी रात नहीं मिटती है। जब सत्य का साक्षात्कार होता है, तब असत्य नहीं रह जाता। अघ अर्थात् पाप नहीं रह जाते-निष्पाप हो जाता है, दोषों से रहित वह महात्मा हो जाता है। उसके हृदय से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि समस्त विकार मर-मिट जाते हैं। काल, कर्म, स्वभाव, गुण ये सब उसके समाप्त हो जाते हैं। इसलिए यह मानस है गोस्वामी जी का-इसे पढ़ा जाय और अपने मानस के अन्दर इसकी एडजस्टिंग किया जाये। साधना में इसका क्रियात्मक उपयोग किया जाय। साधक के लिए यह जरूरी है। अब आगे

इस उत्तरकाण्ड में सत्संग ही सत्संग भरा पड़ा है। सब प्रश्नों के उत्तर इसमें लिख दिए गए हैं, उत्तरकाण्ड में। लेकिन इसे सुन लेने से, चौपाइयां रट लेने से काम नहीं चलता। इन बातों को सुन-समझकर क्रिया में ले लिया जाय, तब इस कथा-सत्संग का लाभ उठाया जा सकता है। दूसरी बात जो सबसे महत्वपूर्ण है, यह है कि हम सत्संग के मर्म को पकड़ते चलें। ज्यादातर ऐसा होता है कि सुनने में रुचि आती है और उसीका रस लोग लेते रह जाते हैं। मतलब की बातें सब छूटती चली जाती हैं। इसलिए थोड़ा पढ़ो, थोड़ा सुनो और उसमें जो पकड़ने की बातें हैं, उन्हें हृदयंगम करते चलो। तब ठीक रहेगा।

दो.- बार बार अस्तुति करि, प्रेम सहित सिरु नाइ।

ब्रह्म भवन सनकादि गे, अति अभीष्ट बर पाइ॥

राम सब भाइयों के साथ उपवन देखने गए। वहां सनकादि चारो भाई राम की स्तुति करने आए। ये सनकादि ब्रह्मा के पुत्र हैं, सृष्टि के आदि से हैं। ये अजर-अमर हैं। नारद इनका भाई है। नारद सहित ये पांच हैं। ये पांचो पांच तत्व हैं। सदैव रहते हैं। नारद है आकाश, और सनकादि चारो-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु के प्रतिरूप हैं। तो जब साधना का परिणाम आ गया-लक्ष्य को पा लिया गया, तब ये सभी तत्व स्तुति करके उस सफलता को प्रमाणित कर रहे हैं। और उस शरीर में अपनी सार्थकता मान रहे हैं सबके शरीरों में ये रहते हैं, लेकिन इनका होना पना सार्थक तब होता है, जब जिस शरीर में परमात्मा की राजगद्दी हो जाती है। इसलिए ये लोग राम की स्तुति करते हैं और उन्हें देखकर अपने आपको धन्य मानते हैं। ये सब बातें उस अवस्था में अन्दर ही अन्दर आती जाती हैं। बाहरी जो गतिविधियाँ दिखाई गई हैं, उनका मतलब अपने अन्दर से है। परमात्मा कोई उपवन में घूमने वाली चीज नहीं है। वह तो हलन-चलन से रहित स्तंभवत् परिपूर्ण है। अखण्ड मंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरं। ऐसा वह है। वह भला कहां आएगा जाएगा। यह गोस्वामी जी की शैली है। इस तरह राम के असली स्वरूप को बताते चलते हैं, जगह जगह। सनकादि के द्वारा बता दिया कि राम का स्वरूप वास्तव में क्या है? 'जय भगवंत अनंत अनामय।' और 'सर्व सर्वगत-सर्व उरालय।' ऐसा है राम। इसलिए संसारी तरीके से बाहरी रूप लेने से राम समझ में नहीं आएगा।

अस बिचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहिं संसृत दुख जाने॥

त्यागहिं कर्म सुभासुभदायक। भजहिंमोहिं सुर नर मुनि नायक॥

संत असंतन के गुन भाषे। ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे॥

दो.- सुनहु तात माया कृत, गुन अरु दोष अनेक।

गुन यह उभय न देखिए, देखिय सो अविवेक।।

तो यह गोस्वामी जी की चतुराई है। पहिले तो संतों में सब अच्छाइयां बताया और असंतों की बुराइयां गिनाया। फिर अन्त में कह दिया कि इन दोनों से शुभ और अशुभ कर्मफल भोगना पड़ता है। इसलिये दोनों का त्याग करना ही ठीक है। अच्छाई-बुराई दोनों मायाकृत है। गुण-दोष का सर्कुलेशन ही संसार है। इससे ऊपर उठ जाना ही परमार्थ है। इन दोनों के द्वन्द्व से छूटने पर ईश्वरीय क्षेत्र में प्रवेश मिलता है। लेकिन इन गुण-अवगुण के ताने-बाने से निकलने का नियम यही है कि पहले सद्गुणों के द्वारा दुर्गुणों को निकाल दिया जाता है। फिर जब सद्गुण ही सद्गुण रह गए, तो इनका भी त्याग कर दिया जाता है। दुर्गुणों को हटाने में सद्गुण मदद करते हैं। अगर सद्गुणों का संग्रह नहीं किया गया, तो दुर्गुण बढ़ते जाएंगे। इनका त्याग ऐसे नहीं होता जैसे तुम सद्गुणों को स्वेच्छा से विदा कर देते हो। ये सब राक्षस ऐसे नहीं निकलते। ये तुम्हारे वश में नहीं रहते, तुमको अपने वश में रखते हैं। सद्गुण तुम्हारे वश में रहते हैं। इन्हें जब चाहो निकाल सकते हो। क्या बेइमानी कभी छूटती है अपने से? वह तो सच्चाई ले आने से ही छूटेगी। और ईमानदारी क्षण भर में चली जायगी, अगर उसे बनाए रखने का प्रयत्न न किया जायगा। इसलिए महात्माओं ने यह तरीका निकाला है, इस सर्कुलेशन से निकलने का। कि पहले सद्गुणों को बढ़ाया जाय-संतों के लक्षण अपनाए जायं। जब ये सबल हो जायं तो इनके द्वारा दुर्गुणों को नष्ट कर दिया जाय। जब दुर्गुण समाप्त हो जायं, तो फिर सद्गुणों को सम्मान सहित बिदा कर दिया जाय। तो यह सब काम साधक के अन्दर, उसके मानस में होने वाला है; संसार में तो अच्छाई-बुराई रहेगी ही। दो के बिना दुनिया नहीं बनी रह सकती। इस संसार से मुक्ति तभी होती है जब इस द्वन्द्व से अलग हो जायं। तो इसी का कायदा-कानून यह रामायण बनाई गई है।

नर तन भव वारिधि कहुं बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो।।

करनधार सद्गुरु दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभकरि पावा।।

दो. जो न तरै भव सागर, नर समाज अस पाइ।

सो कृत निंदक मंदमति, आत्माहन गति जाइ।।

अब तो बस एक ही काम रह गया है-कथा सत्संग। कभी भाइयों के साथ, कभी सनकादि के साथ, कभी नारद, कभी वशिष्ठ, कभी पुरवासियों के साथ सत्संग, यही सब हो रहा है। और उधर 'सारे भूमंडल का राजपाट लिए बैठे हैं। तो यह कैसा राजा

है? यहाँ तो राजनीति की बात तक नहीं होती है, न राजसभा चलती है। कभी उपवन में, कभी अमराई में जब देखो तब सत्संग हो रहा है। राजदरबार में भी वही काम हो रहा है। ऐसे तो संसार में राजकाज चलता नहीं। इसलिए यह बातें सब दूसरी दुनियाकी हैं। आत्मोपलब्धि के बाद महात्मा के लिए कुछ करना बाकी नहीं रहता, वह आत्मा रूप अनन्त साम्राज्य का राजा बन जाता है। उसके लिए अब जगतहित के अतिरिक्त दूसरा काम रह नहीं गया। तो सबका हित जिसमें है, वही बात करते हैं राम। कि चौरासी लाख योनियों में केवल यह मनुष्य योनि ऐसी है जिसमें आत्म कल्याण का उपाय हो सकता है। यह मानवतन इस संसार से पार होने के लिए बेड़ा जैसा है। और इस बेड़े को खे कर पार लगाने वाले हैं सद्गुरु। भगवान की कृपा पूर्व पुण्यों के रूप में मिल जाती है, तो यह अनुकूल हवा का काम करती है। अगर किसी आदमी को बड़े भाग्य से ये सब चीजें मिल जायं तो उसे आत्म कल्याण के लिए तत्पर हो जाना चाहिए। और अगर यह सब होते हुए भी इस संसार-सागर से पार होकर आत्मा में स्थिति नहीं बना पाता तो वह मानव मंदमति है। उसे आत्मा को हनन करने का दोष लगता है। तो अब यहाँ रामायण का उपसंहार कर रहे हैं, इसलिए जो मूल-मूल सूत्र हैं-परमार्थ पथ के, उन्हें विलयर करते जा रहे हैं। वास्तव में मनुष्य शरीर की सार्थकता इसी में है कि इसे 'साधन धाम' बनाया जाय। इससे परमार्थ की सिद्धि किया जाय। जीवात्मा को बंधन मुक्त किया जाय, भजन-साधन करके। इस शरीर को मोक्ष का द्वार बना लिया जाय।

साधनधाम मोक्षकर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक संवारा।।

दो.- सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताय।

कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं मिथ्या दोष लगाय।।

इसलिए मनुष्य देह धारण करके ईश्वर की भक्ति करो, राम कहते हैं। मेरी भक्ति करो। अवध वासियों से कहते हैं। लेकिन क्या किसी ने माना राम की बात? राम की वह हालत कर दिया उन्हीं लोगों ने, कि सीता को घर से निकालना पड़ा। शम्बूक का मामला फंसा दिया लोगों ने, और जो शरीर रूपी अवध के निवासी अवयव हैं वे तो राम मय हो चुके हैं- वे तो राम की भक्ति में रत हैं ही। वहां रामराज्य के प्रसंग में लिखा है पहले ही गोस्वामी जी ने - “राम भगतिरत सब नर नारी। सकल परमगति के अधिकारी।।” तो फिर अब किसे उपदेश करते हैं कि मेरी भक्ति करो। वहाँ बात मानस की हुई और अब बात हो रही है राम चरित की। वह अन्दर की बात थी-यह बाहरी संसार की बात है। तो यह संसार अपने तरीके से चलता है। किसी की नहीं सुनता। मर गए ऋषि-मुनि, भगवान और पैगम्बर शिक्षा देते-देते इस

संसार को। लेकिन उसकी रफ्तार में कोई फर्क कभी आया नहीं। राम को बारह कला का अवतार हम गा रहे हैं, लेकिन उनकी बात नहीं मानी। कृष्ण मर गए पैदा होने के समय से ही कला दिखाते-दिखाते, लेकिन कसी ने उनकी भी बात नहीं मानी। हां, तब यहाँ मथुरा, वृंदावन के आगे कोई नहीं जानता रहा कृष्ण को, जबकि इतनी लम्बी चौड़ी सृष्टि है। और भगवान को बताते हैं कि 'आर पार जाको नहीं', तो यह कैसी बात है कि इन्हें कोई जानता तक नहीं रहा। आजकल तो अगर एक लड़के को चींटी काट ले, तो सुबह होने के पहिले ही सारे संसार को पता लग जाता है, मीडिया के द्वारा? और उस समय इतनी-इतनी कलाएं थीं और एक कोने में होकर मर जाते थे। और आज हम उन्हें भगवान कहते हैं। उनकी महिमा का बखान करते हैं। तो इस दुनिया में समझ में आता नहीं किसी का कुछ। यह सब ऐसे है कि हाथी जा रहा है और ढोल पीटते रहे। इसका एक ही तरीका है कि बाहर से काटकर अन्दर ले आओ। बाहर संसार रह गया बेवकूफ बनकर। इस तरह से 'सार-सार को गहि रहै, थोथा देय उड़ाय।' यह जो आध्यात्मिक कायदा कानून है - अन्दर का, यह सार वस्तु है। इसमें कभी कोई कमी नहीं बता पाया। बाहर बातें करोगे तो कोई मानेगा नहीं। न राम का कहना माना गया, बल्कि राम के जीवन-काल में राम का उपहास हुआ। कृष्ण को उनके जीवन काल में लोग उन्हें जान से मारने को तैयार थे। मथुरा, गोकुल, द्वारका, कहां-कहां भागना पड़ा। और कृष्ण के रहते-रहते कृष्ण का परिवार ऐसा हो गया कि जिस आतंक को खत्म करने भगवान कृष्ण आए थे, और उन आतंकियों को खत्म करके उनकी इनर्जी को छीनकर सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियों के रूप में ले लिए थे, फिर उन्हीं से जो यादव वंश बढ़ा, वही उन आतंकियों से ज्यादा आतंककारी बन गया। कृष्ण के ही पुत्र-पौत्र (साम्ब बगैरह), महात्माओं को भजन नहीं करने देते थे, परेशान करते थे। यहाँ वहाँ उपद्रव करते थे। शराब पीते थे, बदमाशी करते थे; और उनका संरक्षण करते थे कृष्ण और बल्दाऊ। अब यह सब लिखे कौन, और कौन सुने? तो यह सब दुनिया की बातें ऐसी होती हैं। यहां तो जो सनक-सुरुर आगई, वह आगई दुनिया को। फिर कहते हैं कृष्ण बहेलिया के द्वारा मारे गए, बल्दाऊ मर गए और सब यदुवंशी आपस में मरकट गए। तो यह दुनिया है, काल बाधित है। वही अर्जुन था, वही गांडीव था हाथ में, लेकिन कोल-भीलों ने मारकूट कर धर दिया। कहाँ गए वे वाण, कहाँ गई वह ताकत? यह संसार में एक्शन रिएक्शन का रोग आ जाता है।

इसलिए संसार को जो टव करेगा - इसे साथ में लेकर चलेगा - वह इस रोग से बच नहीं सकता। अब तुलसीदास को ही ले लो। अच्छे संत थे, विद्वान थे। इतना

उच्चकोटि का ग्रंथ बनाया, यह राम चरित मानस। इसमें उन्होंने लोक कल्याण की भावना से ऐसा प्रयास किया है कि अध्यात्म इसमें गहराई में भरा रहे और झलकता भी रहे। पूरा रीढ़-आधार अध्यात्म रहे, और उस पर जो मुलम्मा है, सजावट है, कलर है, फूलपत्ती है, वह सब सांसारिक रहे। और इस रचना को देश-काल अबाधित मान्यता मिले। क्योंकि अध्यात्म तो विषय ही ऐसा है, जो सार्वभौमिक-सार्वकालिक और सर्वजनीन होता है। उसमें जाति, धर्म, देश, भाषा सब भेद समाप्त हो जाते हैं। इसलिए इसे नाम दिया गया-‘रामचरित मानस’। ताकि यह बाहरी संसार में भी खरी उतरे और अन्दर मानस के रूप में भी सही आए। गोस्वामी जी के अनुसार यह रामायण ऐसी है कि- जो संसार भर के लोगों का कल्याण करने वाली है - ‘राम कथा जग मंगल करनी’ ऐसा भाव लेकर लिखा है उन्होंने।

सबके लिए हितकर बनाने का प्रयास रहा है उनका। लेकिन आजकल जहां एक तरफ दुनिया भर में रामचरित मानस को सुना सुनाया जा रहा है, वहीं बेमतलब की बातों को लेकर उसका उपहास भी किया जा रहा है। लोग कहते हैं - गोस्वामी जी ने ऐसा लिख दिया, वैसा लिख दिया।

तो हम कह रह थे कि यह संसार किसी को छोड़ता नहीं, यह काजल को कोठरी है। इसमें जाओगे तो कालिख लग ही जायगी। तुलसीदास तो संत थे। मर गए बाबा सबकी-दुष्टों तक की-स्तुति वंदना करते-करते। क्षमा याचना करते-करते। लेकिन बच नहीं पाए। क्यों नहीं बचे? क्योंकि उन्होंने इसमें अलौकिक के साथ-साथ लौकिक को भी लिया। तो फिर बचेंगे नहीं। यह दुनिया छोड़ नहीं सकती। स्तुति भी कर लेगी, निन्दा भी करेगी। ऐक्शन-रिएक्शन का नियम इसमें जरूरी है। इससे बचना है तो उधर से आंख मूंद लिया जाय और अपने मानस में हमेशा अवगाहन किया जाय।

‘पूजिय विप्रशील गुण हीना। शूद्र न गुणगन ज्ञान प्रवीना।।’

तो समझना चाहिए कि इसमें जात-पांत का मतलब कुछ नहीं है। विप्रत्व तो एक पहुंच है, उच्चतम श्रेणी है, डिग्री है साधना की। इन्हीं बातों को लेकर तुलसीदास को ब्राह्मणों का पक्षधर कह दिया जाता है। अरे, यहाँ तो पहले से नियम चला आ रहा है कि - ‘जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते।’ पैदाइश से सभी शूद्र हैं। संतों के संसर्ग में संस्कारित होकर कोई आदमी खराब से अच्छा बना फिर अच्छे से अच्छा बना, फिर सबसे अच्छा बन जाता है। इस तरह शूद्र से वैश्य; क्षत्रिय, और आखीर में ब्रह्मत्व प्राप्त करे, तब वह ब्राह्मण कहा जाता है। तो अगर किसी ने साधना करके शूद्रस्तर से उठते-उठते ब्राह्मी अवस्था को पालिया है, वह महात्मा ब्राह्मण है, वह

पूजनीय है। और किसी के घर में पैदा होने से ऊँच-नीच कोई नहीं होता, सब मनुष्य हैं। यह ऋषियों-मुनियों की मूल परंपरा ऐसी है। यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एक ही साधक की चार साधनात्मक अवस्थाएं हैं। छोटी-बड़ी कक्षाएं हैं पढ़ाई की। उसी की बात यहाँ कही गई है। यह ध्यान देना चाहिए कि कहाँ किस प्रसंग में यह बात कही गई है। जब कबंध राक्षस को मारा राम ने तो वह अपने असली रूप में आया और बताया कि मुझे दुर्बाशा ऋषि ने शाप दिया था, तो मैं गंधर्व से राक्षस बन गया था। तो अब यह बताओ कि दुर्बाशा तो महात्मा थे। महात्मा की ही बात हो रही है। उसी को ब्राह्मण, भूसुर, द्विज और विप्र कहा गया है। किसी जाति विशेष को नहीं कहा गया है। स्थिति प्रज्ञ महात्मा चाहे बाहरी सांसारिक शील सदाचार युक्त न भी हो, वेद शास्त्र पारंगत विद्वान न भी हो, तो भी वंदनीय है। और जो शूद्र अर्थात् छोटे स्तर का साधक है, पहली भूमिका में अभी एडमिट हुआ है, वह भले ही सांसारिक बात व्यवहार, पढ़ाई लिखाई में आगे हो लेकिन आध्यात्मिक प्रगति अभी नहीं कर पाया है, वह पूजनीय नहीं होता है। ऐसा मतलब है इसका।

तो यह भारत देश ऋषियों-मुनियों और संतमहापुरुषों को सबसे ऊँचा स्थान देता आया है। राजा हो चाहे महाराजा हो, चाहे भगवान हो, सब महात्मा के पीछे चलते हैं। इन्हीं संत महापुरुषों को ब्राह्मण, द्विज, विप्र, भूसुर आदि नामों से कहा गया है। इसमें जातिभेद का कोई मतलब नहीं है। जाति तो सबकी एक है - मानव जाति।

साधकों को इन फालतू की बातों में नहीं पड़ना चाहिए। उसे अपने साधन-कर्तव्य में निरंतर लगे रहना चाहिए और अगर कोई प्रसंग आ ही जाय, तो आध्यात्मिक आधार लेकर चलना चाहिए। सार्वभौमिक सिद्धान्त में कभी कोई गड़बड़ी नहीं आ सकती। इसलिए सबको समाहित करके हमेशा व्यापक भाव लिए रहना चाहिए। महात्मा को संकीर्ण विचार नहीं रखना चाहिए। व्यापक विचार होना चाहिए। एकांगी दृष्टि नहीं सर्वांगीण दृष्टि होना चाहिए।

हरि चरित्र मानस तुम्ह गावा। सुनि मैं नाथ अमित सुख पावा॥

तुम्ह जो कही यह कथा सुहाई। कागभुसुंडि गरुड़ प्रति गाई॥

दो.- विरति ज्ञान विज्ञान दृढ़, राम चरन अति नेह।

वासय तन रघुपति भगति, मोहि परम संदेह॥

शंकर जी ने पूरी कथा सुना दिया पार्वती को। और यह भी बता दिया कि यह कथा कागभुसुंडिने गरुड़ को सुनाई थी। जब यह बात पार्वती ने सुनी, तो फिर से उनके मन में एक नया तर्क तैयार हो गया। कहाँ तो सब संदेह भ्रम चले गए थे

कथा सुनने से, लेकिन उसी कथा के भीतर से एक संदेह पैदा करने वाली बात आ गई। ऐसे तो सब वेद शास्त्र और महात्मा लोग बताते हैं कि विवेक, वैराग्य, ज्ञान, भक्ति सब मानवतन में होते हैं। तो फिर यह कौआ (काग भसुंडि) कैसे पा गया ? यह संदेह पैदा हुआ। तो यह कवियों का तरीका होता है कि जो प्रसंग आगे लिखना है उसकी इस तरह से भूमिका बना लेते हैं पहले से। दूसरी बात है कि यह तर्क समाज के हर आदमी के दिमाग में स्वाभाविक खड़ा हो जाता है। कौआ को कथा से क्या मतलब ? यह अधम पक्षी कहां से ज्ञानी-वक्ता बन गया ? तो यहां तो पूरी कथा में गोस्वामी जी ने बन्दर, भालू, गीध आदि सभी को आदमी की तरह से बात-व्यवहार करते दिखाया है। इतना ही नहीं इसमें तो नदी, पहाड़, समुद्र को भी बिल्कुल आदमी की तरह वर्ताव करते दिखाया गया है। यहां तक कि हिमालय के घर पार्वती का जन्म, विवाह आदि सब वैसे ही हुआ है जैसे मनुष्य समाज में होता है। तो अब यह विचार किया जाना चाहिए कि गोस्वामी जी जो इतने बड़े बुद्धिमान थे, क्या नहीं जानते थे, कि ये चीजें जो हम लिख रहे हैं, संसार के नियम से ठीक नहीं है ? अवश्य जानते थे, लेकिन जानबूझ कर लिखा है उन्होंने। यही बातें ऐसी हैं जो इस रामायण को अध्यात्म की चीज बना देती हैं। गोस्वामी जी ने सोचा कि ये जितने ऐसे प्रसंग हैं उनपर प्रबुद्ध आदमी की बुद्धि तर्क करेगी, और अगर सही जिज्ञासु होगा तो समाधान खोजने में लग जाएगा। अगर उसमें पूर्व के पुण्य हैं, तो किसी संत-सद्गुरु से भेंट हो जायगी। और वह जब देखलेंगे कि यह सच्चा जिज्ञासु है-इसके हृदय रूपी हिमालय में ईश्वरीय प्रेम रूपी पार्वती आ चुकी है, तो उसे वह संत-शंकर अपना लेंगे। और उसे मानस की कथा का सही बोध करा देंगे। तब सारे तर्क शान्त हो जाएंगे। उस सुपात्र के शरीर रूपी अवध में जब भगवान प्रादुर्भूत होकर बैठ जाएंगे और जब पक्का विश्वास आ जायगा। तो यह विश्वास रूपी विश्वामित्र जहाँ आया, तो फिर तर्कना रूपी ताड़का बचेगी नहीं। ऐसा यह 'रामचरित' अपने 'मानस' में लिए बगैर, 'रामचरित मानस' समझ में आ नहीं सकता। 'वास्तविकता तो यह है कि सही चीज' कोई समझना ही नहीं चाहता। सही चीज समझने के लिए सुमति चाहिए। वही सत्संग रूपी शत्रुघ्न और विवेक रूपी लक्ष्मण को उत्पन्न करने वाली सुमित्रा है - उसके बिना ये मिलेंगे नहीं।

अक्सर ऐसा ही देखा जाता है कि आदमी या तो मूढ़बुद्धि होकर तर्क करेगा ही नहीं और रुढ़ि को पकड़े चला जाएगा। या तो तर्क ही तर्क करता रहेगा-तर्कों का समाधान खोजने का प्रयत्न नहीं करेगा। और यदि करेगा भी तो बस संसारी तरीके से बुद्धि लगा-लगाकर थक जाएगा। परिणाम यह होगा कि उसे अश्रद्धा हो जायगी।

छोड़कर बैठ जायगा। बहुत करेगा तो इसमें जो सामाजिक तौर तरीके आए हैं उनके अनुसंधान में लगा रहेगा। ज्यादातर पढ़े लिखे लोग यही कर रहे हैं। इसके आध्यात्मिक अर्थ को खोजने बताने और समझने वाले बहुत कम लोग हैं। क्योंकि यह रास्ता ही ऐसा है कि कोई-कोई इसे पकड़ पाता है।

‘अति हरि कृपा जाहि पर होई। पाउं देइ यहि मारग सोई।।’

अगर पहिले की कमाई है, कुछ पुण्य की पूंजी पुरानी है, तो वह काम करती है इसमें, और यह जो आजकल रामायण पर प्रवचन होते हैं, उनमें इन सब बातों को बताया नहीं जाता। बाहरी सत्संग, पूजा, पाठ यज्ञ अनुष्ठान यह सब अध्यात्म से अलग है। अध्यात्म अन्दर की चीज है।

गिरि सुमेर उत्तर दिसि दूरी। नील सैल एक सुंदर भूरी।।

तासु कनक मय सिखर सुहाए। चारि चारु मोरे मन भाए।।

तिन्ह पर एक एक विटप विसाला। बट पीपर पाकरी रसाला।।

सैलोपरि सर सुन्दर सोहा। मनि सोपान देखि मन मोहा।।

कोई संत-शंकर ही उस जगह तक पहुंच पाते हैं - काग मुसुंडि जहां रहता है। नीलगिरि पर्वत है उत्तर में। उत्तर, ऊपर, बहुत ऊपर। नीलगिरि, जो निर्मल आकाश है, वह नीलगिरि। वहाँ कागभुसुंडि रहता है। वहाँ एक त्याग रूपी तालाब है। वह सब कुछ त्याग कर चुका है। अपने में मस्त रहता है। उसे न अविद्या व्यापती है, न शरीर की व्याधियां व्यापती हैं। न उसे वैकुंठ से मतलब है, न उसे ईश्वर- से मतलब है, न माया से मतलब है- इन दोनों का त्याग कर देता है। तो वह हमेशा लेबल में रहता है। ऐसा वह पद है कागभुसुंडि का। और जब-जब मन रूपी गरुण को भ्रम होता है, यहीं से समाधान पाता है। यह मन है सवारी, आत्मा की। आत्मा इसे ताकत देती है, इनर्जी देती है। यह मन उसका वाहन है, एजेन्ट है। यह उसका मुनीम है, मैनेजर है। यह भी कभी-कभी भ्रम में पड़ जाता है। भगवान को साधारण समझ लेता है। ईगो से परेशान हो जाता है। ऐसी घटना हो जाती है, कि इसे कागभुसुंडि के अलावा कोई दूसरा समझा नहीं सकता। गरुड़ को ऐसे ही हुआ। जब काम रूपी मेघनाद ने राम, लक्ष्मण को नागपास में बाँध डाला। तो जब बंध गये, निर्जीव हो गये, तो फिर नारद जी ने गरुड़ को भेजा और गरुड़ ने उन नागों को काटा। जब काट दिया, तो सजीव हो गये राम लक्ष्मण। तो गरुड़ को यह अभिमान आया, कि ये कैसे भगवान हैं? ये तो मेरे छुड़ाने से बचे, नहीं तो मर गये होते आज। ईश्वर तो बड़े महान शक्ति वाले हाते हैं, बलवान होते हैं-ऐसा तो मेरी समझ में नहीं आता। गरुड़ को

इस प्रकार भ्रम हुआ। और जहाँ भ्रम हुआ, तो माया दबा लेती है। जैसे, हंडी रख दो, लड्डू भर कर। बन्दर आया, हाथ डाला। लड्डू छोड़ दे, तो हाथ निकल सकता है। लेकिन उसे भ्रम हो गया कि उसका हाथ किसी ने पकड़ लिया है। इसलिये फंस गया। हाथ निकल नहीं रहा-हंडी भारी है, तो उठ नहीं रही। अपने भ्रम से फंस गये। इसी तरह माया फंसा देती है।

‘सो माया बस पर्यो गोसाईं॥

बंध्यो कीर मर्कट की नाईं।’

बंध गया। तोता होता है-कीर। तो किसान खेत में, एक लकड़ी गाड़ देता है। उसमें बांस की एक पोली डाल देता है-वह ऐसे घूमती रहती है। और जब धान की बाली काट कर उड़ा, तो बाली के वजन से बैठने का मन करता है। बैठने के लिए जैसे ही लकड़ी की पोली को पकड़ा-वह घूम जाती है। तोता उल्टा टंग जाता है। अब तोते ने पोली को पकड़ रखा है, लेकिन उल्टा हो जाने से उसे भ्रम हो गया, कि मुझे किसी ने पकड़ रखा है। उसे किसी ने पकड़ा तो है नहीं। अपने भ्रम से फंसा। बस टांय-टांय करता रहता है। पकड़ कर मार दिया, बस ठंडा पड़ गया।

ऐसे बंध जाता है। कागभुसुंडि नहीं बंधता इसमें। यह एक ऐसी डिग्री है। गुणातीत यह सुप्रीम है। एक ऐसा कोष्ठक है, मन के अन्दर, कि उसमें जाकर मनुष्य के जीवन के रिकार्ड बनते हैं। उसमें जाकर प्राप्ति होगी, मुक्ति होगी, क्या-क्या होगा? उसका नाम है कागभुसुंडि-साधक की कांक्षा। कांक्षा का अर्थ है- मोक्ष की अकांक्षा, प्राप्ति की इच्छा जो शुरु में साधक के अंदर आती है। फिर वह साधना का रूप ले लेती है- फिर सूक्ष्म साधना हो जाती है। फिर धीरे धीरे नाम, रूप, लीला के रूप में आ जाती है। फिर वह श्वासा के रूप में उठायी जाती है। श्वासा जब उठती है, मूलाधार से स्वाधिष्ठान, स्वाधिष्ठान से मणिपूर, मणिपूर से अनाहत, अनाहत से मूर्धा। तो यहां पर जब आती है मूर्धा के ऊपर, तो यहां, से फिर भ्रमर गुफा में जाती है। भ्रमर गुफा में जाकर-सोवे सुरता सेज विछाता है।’ तो यह कागभुसुंडि जो है यह एक साधन का पार्ट है। एक अंग है। यह जो मानस है, गोस्वामी जी का, उसमें मन में आने वाले जो विचार हैं, साधन पदार्थ हैं, उनको सब को समेट कर एक उच्च स्तर का स्थान बनाया है, मूर्धा। वह सुमेरु और कागभुसुंडि को वक्ता बनाया और प्रश्नकर्ता गरुड़ को बनाया है।

इस मानस, सरोवर के चार घाट हैं, जो इसके चार संवाद है। तो उनमें से एक है कि गोस्वामी जी बाहर समाज को बता रहे हैं। दूसरे भरद्वाज जी को याज्ञवल्क्य ने

बताया, तीसरे शंकर जी पार्वती को बता रहे हैं और चौथे वक्ता, कागभुसुंडि जी गYड को बता रहे हैं। तुलसी दास ने यह कथा राम नवमी को राम के जन्म की तिथि को मंगलवार के दिन चैत के महीने में अवधीपुरी में शुरू किया था।

नौमी भौमतार मधुमासा।
अवधपुरी यह चरित प्रकाश।
जा दिन राम जनम श्रुति
गावहिं।
तीरथ सकल तहां चलि
आवहिं।

तो गोस्वामी जी गुरु रूप में किसी साधक के शरीर रूपी अवध में यह मानस कथा का संचार कर रहे हैं। जब उस भाग्यशाली साधक के अंदर जाग्रति आ जाय कि यह संसार दुःख का घर है मैं भगवान की भक्ति करूंगा, इस तरह से चेत जाय, यह चैत है और वही दिन उसके कल्याण का, मंगल का दिन है जब उसकी सब इंद्रियां अनुकूल हो जायं और उसके मन में परमात्मा का उदय हो जाय। और ऐसा सुयोग साधक के अन्दर बन जाता है तो उसे कोई ऐसा महात्मा-सद्गुरु - (गोस्वामी) जिसमें अपनी गो नाम इंद्रियों पर नियंत्रण कर लिया है- मिल जाएगा और राम के चरित्र जो मानस में होते हैं उनको प्रकाशित कर देगा। उसे हृदयंगम करा देगा - मानस के अन्दर की पूरी साधना की रूपरेखा समझा देगा।

फिर दूसरा घाट इस मानस का है याज्ञवल्क्य और भरद्वाज का संवाद। जब साधक अपनी साधना को आगे बढ़ाते-बढ़ाते योग के द्वारा क्षमता प्राप्त कर लेता है और इसे कर्तव्य धर्म स्वीकार करके सूक्ष्म साधना में प्रवेश कर जाता है और त्रिकुटी रूपी प्रयाग में - इंडा, पिंगला और सुषुमा इन तीनों के संगम में भजन की योग्यता प्राप्त कर लेता है। वहाँ अन्दर से जानकारी रूपी याज्ञवल्क्य स्वयं आकर इस भजन की पूरी प्रक्रिया का बोध कराता है। भजन की सही धारा मिल गई। तो फिर सब ज्ञान, विवेक, भाव जितने है परिपक्व होकर उसको साधना में आगे बढ़ा देते हैं।

भजन करते करते जब अन्दर से प्रगाढ़ भक्ति रूपी पार्वती हृदय रूपी हिमालय में पैदा हो जाती है और सत्य स्वरूप शंकर उसे परीक्षा लेकर स्वीकार कर लेते हैं। तो फिर इसी कायारूपी कैलाश में बैठकर यह संवाद होता है। फिर जब सब संदेह-भ्रम मन से निकल जाते हैं। परमात्मा के-रहस्य का बोध हो जाता है। जब साधक का मन सतोगुणी वृत्ति वाला हो जाए तो गरुड़ रूप हो जाता है - विष्णु का

वाहन बन जाता है। हमेशा ईश्वर को लिए रहता है। लेकिन मन सतोगुणी होने पर भी, है तो अभी माया के ही दायरे में, भले ही विद्या माया के क्षेत्र में हो। तो विष्णु, सतोगुण के देवता हैं, ब्रह्मा रजो गुण के देवता है, शंकर तमोगुण के देवता हैं। ये त्रिदेव कहे जाते हैं। परमात्मा इन सबसे ऊपर त्रिगुणातीत होता है। इसलिए इनसे परे होना पड़ता है। त्रिगुणातीत होना पड़ता है, उसके लिए वह चौथा घाट है कागभुसुंडि गरुड़ का संवाद

वहाँ माया नहीं रह जाएगी। त्रिदेवोंके वहाँ तक माया की पहुँच हैं। विष्णु के पास रहते हुए भी यह मन रूपी गरुड़ कभी कभी माया के चक्कर में फँस जाता है। इसलिए साधक को हमेशा से सावधान रहना चाहिए। चक्कर ऐसा फँस गया कि जब राम-रावण के युद्ध में मेघनाद ने राम, लक्ष्मण, सुग्रीव सहित सब को नाग पाश में बांध दिया तब उनको छुड़ाने के लिए नारद ने गरुड़ को भेजा था। गरुड़ ने उन्हें नाग पाश से छुड़ाया तो उसको संदेह हो गया कि यह कैसा भगवान है जोकि एक मामूली राक्षस से परास्त हो गया और मेरी सहायता से बच पाया नहीं तो आज मर ही गया होता - ऐसा तो भगवान होता नहीं। वह तो सर्वशक्तिमान होता है। यह भ्रम हो गया गरुड़ को। तो गरुड़ कहते हैं साधक के अन्दर जीता हुआ उसका मन। यह जितना साधन भजन है सब मन से ही होता है। जो क्षमता आती है, जो पहुँच बनती है - सबका कर्ता-धर्ता यही मन है। तो इस मन के अन्दर जहाँ यह बात आई कि मैं इतनी अच्छी और उच्च स्थिति में पहुँच गया हूँ, इतनी क्षमता वाला हो गया हूँ तो माया को मौका मिल जाता है, और उसके अन्दर प्रवेश कर जाती है। साधक के अन्दर जैसे ही यह बात आई कि यह तो जितनी प्रगति हुई है मेरे पुरुषार्थ का परिणाम है। तो फिर उसने मानो माया को न्योता दे दिया। और फिर उसे माया चक्कर में डाल देती है। यही बात गरुड़ की कहानी के रूप में लिखी गई है। बचने का तरीका यह है कि अपनी सब योग्यता क्षमता भगवान को समर्पित करता जाय, दूसरा कोई उपाय नहीं है। जो प्रगति आए, अच्छाई आए उसे भगवान की माने और जो गड़बड़ी हो उसे अपनी माने और उसके लिए क्षमा याचना कर ले।

तो जब गरुड़ को संदेह हुआ तब नारद के पास गए, नारद के कहने से ही आए थे नाग पाश काटने। नारद कहते हैं आकाश को। साधकों को अन्दर से जो वाणी मिलती रहती है वह नारद का ही काम है। साधना की अच्छी स्थिति में साधक को अन्दर से ही सरोकार रह जाता है। उसका मन अति सूक्ष्म हो जाता है, आकाशचारी हो जाता है - इसलिए यहां पक्षी का रूप दिया गया है। गरुड़ कहा गया है। हमेशा भगवान में लगा रहता है तब भी दिक्कत आ सकती है। साधक

जितनी ऊंची अवस्था में पहुंच बनाता जाता है, माया की तरफ से उतनी ही कठिन परीक्षा ली जाती है। अपने ही अन्दर से संदेह-भ्रम पैदा हो गया मन में। तो अब परेशान हो गया, अशान्ति आ गई, अब कैसे यह गड़बड़ी दूर हो? तो अपने अन्दर ही समाधान खोजेगा। गरुड़ गए नारद के पास - अपने अन्दर के आकाश में हल खोजने में लगे। तो नारद ने कहा कि हे गरुड़, तुम्हें भगवान की माया लग गई है। यह सबको नचा देती है। तुम ब्रह्माजी के पास जाओ वो बताएंगे। ब्रह्मा जी ने शंकर जी के पास भेज दिया। शंकर जी उसे रास्ते में मिल गए, उनसे बताया तो फिर शंकर जी ने गरुड़ से कहा कि तुम वहां जाओ जहां काग भुसुंडि रहता है - उत्तर दिशा में नीलगिरि शिखर के ऊपर - वहाँ तुम्हारी यह सब बीमारी दूर होगी। तब वहाँ गए। तो जब साधना की उच्च से उच्च अवस्था की ओर साधक बढ़ता जाता है और बीच में उसके अन्दर से ही माया अपना खेल रच देती है तो बाहर-बाहर कहीं भागने से कुछ नहीं मिलता। उसे अपने अन्दर ध्यान में बैठकर अनुसंधान करना पड़ता है। पता लगाना पड़ता है कि यह बाधा कहाँ से पैदा हुई, कैसे क्या किया जाय कि मामला ठीक हो जाय। नारद से मिलने का मतलब यही है कि साधक ध्यानस्थ होकर यह समझने में लग गया कि यह कैसी लीला है जो मेरे अन्दर चल रही है। उसे वाणी मिल गई कि अरे ! यह वही माया है जो संशय के रूप में मेरे अन्दर घुस गई है। अब इसको हटाने में लग गया तो अपनी बुद्धि लगाया, वहां से समझ में आया कि सत्य स्वरूप शंकर को पकड़ा जाय। उससे जब भेंट हुई तो वहां से निर्देश मिल गया कि माया के सर्कुलेशन से अगर बचना है तो और एक सीढ़ी ऊपर जाना पड़ेगा। सुषुप्ति के आगे तुरीय और तुरीयातीत में जब पहुंच बन जाती है, तब फिर उसे माया टच नहीं कर पाती वह जगह है काग भुसुंडि की। उस जगह पर पहुंचने पर सब संशय, भ्रम मिट जाते हैं। वह ऐसी जगह है जहाँ माया की पहुंच नहीं है। वह सही जगह है।

‘व्यापै तहं न अविधा जोजन एक प्रजंत ।

तो फिर यह मन रूपी गरुड़ जब उड़ान भरता है तो ‘मेरुदण्ड की सीढ़ी बनाकर शून्य शिखर चढ़ जाता है। भ्रमर गुफा में जाकर सोवै सुरता सेज बिछाता है।’

तो उत्तर दिशा में, ऊपर की ओर बहुत ऊपर सुमेरु के ऊपर नीलगिरि पर्वत पर वह जगह है। सुरति जब मूर्धा के आगे भ्रमर गुफा में जाकर शान्त हो जाती है तब वहां फिर यह रामकथा निरंतर होती रहती है - एक रस आत्मानुभूति होती रहती है। योगी के लिए यह परम उपलब्धि है, माया से मुक्ति मिल जाती है। आनन्द का खजाना मिल जाता है।

इसी अनुभूति को कबीर दास ने अपने ढंग से कह दिया कि -

‘सुरति समानी शब्द में अब कछु कहा न जाय।’

तो शुरु-शुरु में साधक के अन्दर परमात्मा को पाने के लिए जो मूल अकांक्षा पैदा होती है वही साधना का रूप खड़ा कर देती है। आगे सुरति का रूप ले लेती है और बारीक होते होते स्वरूप में समाहित हो जाती है। अमृत मिल गया अजर-अमर हो गया। तो उसी अकांक्षा का रूप यह कागभुसुंडि है। इस तरह से वहाँ उसका स्थान है। सुमेरु के ऊपर मूर्धा के ऊपर, नीलगिरि में अर्थात् आकाशवत निर्लेप अवस्था में हमेशा रहता है। वहाँ वृद्ध विहंगों का दरबार है। वहाँ जब साधक का जागा हुआ मन रूपी गरुड़ पहुँच जायगा तब काम पूरा हो जायगा। भागदौड़ सब समाप्त हो जायगी - बोध हो जायगा। इस तरह से यह इस मानस का चौथा घाट है। कागभुसुंडि और गरुड़ का संवाद। ये चारो मानस के घाट एक दूसरे से जुड़े हुए रहते हैं और प्रत्येक घाट से उसी अमृत का पान करते रहते हैं अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार जब भक्त साधक जब मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार की साधना करता है। काल, कर्म, स्वभाव, गुण - इनसे छूट जाता है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय इन चार, अवस्थाओं के प्रतीक हैं - ये चारो संवाद। स्थूल, सूक्ष्म, कारण और कारणातीत स्तर की साधना है इनमें - अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये परिणाम आते हैं। तो यह मानस-मन बुद्धि, चित्त, अहंकार (अंतःकरण) - जो है साधक का, उसमें साधना का रूप खड़ा किया है इस तरह से गोस्वामी जी ने। दुनिया में कहीं बाहर ढूँढ़ेंगे तो न गरुड़ मिलेगा, न कागभुसुंडि मिलेगा, न नारद का पता पाओगे न सुमेरु पर्वत का। इसलिए अगर समझ काम कर जाय तो अपने अन्दर प्रवेश कर जाओ और अपने मानस की रीडिंग करो। वहाँ की खोजबीन करने लगोगे तो ये सब पात्र वहाँ मिल जाएंगे। मानस के इस रहस्य को समझो और अन्तर्मुखी होकर लगन के साथ भजन में लगे रहो। मनुष्य के लिए सुख शान्ति का एक यही रास्ता है।

प्रार्थना, सुरति, क्षमायाचना, मेडिटेशन (ध्यान) अजपा ये सब जिससे मिलते हैं, उसको कांक्षा कहते हैं। कांक्षा काग भुसुंडि है। यह अजर अमर है और शुरु से है। कांक्षा कहते हैं सुरति को। तो वो निर्लेप वाले, रिसर्च करने वाले जो साधक हुए हैं, उनकी अपनी भाषा है। है बात एक ही। किसी ने उसी को कांक्षा कह दिया। किसी ने उसी को सुरति कह दिया, किसी ने उसी को अजपा कह दिया, किसी ने उसी को परावाणी कह दिया। अलग-अलग हो गया। लेकिन जो प्रैक्टिकल करने वाला साधक होगा, वही इसकी एडजस्टिंग करेगा। दूसरे को अलग-अलग मालूम होगा। जैसे भक्ति

है, ज्ञान है। कहेंगे भक्ति मार्ग अलग है, ज्ञान मार्ग अलग है। आजकल बड़े-बड़े व्यास इसके अर्थ अलग-अलग करते हैं। लेकिन अलग-अलग नहीं हो सकते। आजकल यह प्रवृत्ति चल गई है कि जब हम एक बात पर टापिक (शीर्षक) लेकर बोलते हैं तो उसके दस अर्थ करेंगे। बीस अर्थ करेंगे। पचीस अर्थ करेंगे। तो लोगों में पूंजी बनती है कि इतना बड़ा विद्वान है, इतने अर्थ बता रहा है, इतनी शैली से बोल रहा है। ये वाहवाही लूटने के लिए आजकल ऐसा करते हैं। लेकिन यह गलत है। एक अर्थ जितना किसी चीज़ का हो उसका आधा अर्थ में समझना चाहिए। आधे में जो समझ सकता हो उसको चौथाई में समझाना चाहिए तब ठीक है। जो वाल्यूम (आयतन) में सिकुड़ते जाते हैं सिकुड़ जाते हैं उसकी सबसे ज्यादा वैल्यू (कीमत) होती है-यह तरीका है। समास शैली हो, व्यास शैली नहीं, लेकिन समाज में उल्टा हो गया है। इसलिए हम कहते हैं कि दुनिया साधक से उल्टी है।

‘चलती को गाड़ी कहें, बे चलती को दौरी।

दूध का बनता खोवा, देख के कबिरा रोवा।।’

दौरी जो एक जगह रखी रहती है ठोकरी, उसको दौरी कहते हैं। दौरी का मतलब जो दौड़ती है। गाड़ी, जो चल रही है, उसको गाड़ी कहते हैं। गाड़ी का मतलब गड़ी हुई-और वो चल रही है। दूध को औटते-औटते जब उसका असली तत्व बन गया खोवा। खोवा कहते हैं खो गया। तो दुनिया का तरीका देखकर कबीर रो रहा है, कि मर गए, यह कैसी दुनिया है? यह उल्टी कैसी है? सीधा क्यों नहीं बात करते लोग? तो दुनिया जिसको सीधा मानती है, कबीर महात्मा है, उसे उल्टा मानता है। इसलिए साधना की दृष्टि से इनके सबके अलग अर्थ होते हैं। वही अर्थ करना चाहिए अब जैसे - अध्यात्म का यह नियम है, कि अगर तुम ज्ञान को ले लेते हो तो विवेक भी आ जायगा, अनुराग भी आ जायगा, जानकारी भी आ जायगी, सब आ जायगा। अगर तुम वैराग्य को ले लो, तो थोड़ा-थोड़ा सबका आ जायगा। ऐसासिद्धान्त है। अगर तुम बदमाशी में क्रोध को ले लो तो काम का भी अंश आ जायगा, मोह का भी आ जायगा, लोभ का भी अंश आ जायगा ममता का भी आयेगा, सबका आ जायगा।

लेकिन यह करने से पता चलता है। क्रियात्मक ज्ञान अलग होता है। जो प्रैक्टिकल करके खूब परखा हुआ ज्ञान है - वह विशेष ज्ञान, अनुभव ज्ञान। उसे विज्ञान कहते हैं। और एक होता है वाक्य ज्ञान। चार चौपाई रट लिए और बोलने लगे - प्रवचन करने लगे। आजकल बाकायदे इसकी ट्रेनिंग होती है, प्रवचन वालों की। कुछ खास-खास सूत्र याद करा देते हैं, शास्त्रों के प्रसंग के अनुसार, और व्यास

बना देते हैं। तो यह शब्दों के तोड़-मरोड़ से मतलब रखते हैं। और जिसने साधना किया है। गुरुओं के मार्गदर्शन में प्रवेशिका से पराकाष्ठा तक चलकर देखा है। उसे प्रत्यक्ष ज्ञान हर बात का रहता है। उसकी बात अलग है। वह जानकारी जड़ने के लिए नहीं बोलता। न नाम कमाने के लिए व्याख्यान करता है, न पैसा के लिए। वह तो साधकों के लिए, मुमुक्षुओं के लिए जितना जरूरी हुआ बता देता है। जो भजन-साधन करके अपना कल्याण करना चाहते हैं, उन्हें महात्मा के पास जाना पड़ता है। संत-सद्गुरु की सेवा में रहकर जो साधना करते हैं; अनुभूतियां बढोरते हैं और क्रियात्मक ज्ञान की पूंजी जुटाते हैं, उन्हें फिर रटने की जरूरत नहीं रहती। साधना करते-करते एक दिन ऐसी स्थिति बनती है कि ज्ञान स्वरूप परमात्मा उसके अन्दर हमेशा-हमेशा के लिए आकर बैठ जाता है। तब वह सर्वज्ञ हो जाता है। भगवान उसके अन्दर से बोलने लगता है। उसे ज्ञान कहते हैं। जिसको उस ज्ञान की एकरस अनुभूति मिली हुई है-यह सर्वज्ञ बन जाता है, ईश्वर कह दिया जाता है-‘जो सबके रह ज्ञान एकरस। ईश्वर जीवहिं भेद कहहु कस।।’

यही तो सब अब इस रामायण के आखीर में बताया गया है, कागभुसुंडि और गरुड़ के संवाद में। अपरोक्ष ज्ञान ही भगवान है-

“ज्ञान अखण्ड एक सीतावर। माया वस्य जीव सचराचर।।”

तो यह काग भुसुंडि-गरुड़ का प्रसंग प्राप्ति वाली अवस्था का है, जब महात्मा आकाशवत स्थिति में रहनी बना लेता है। वहाँ सब वृद्ध विहंगों का दरबार है। आकाशचारी रहते हैं सब वहाँ। वहाँ राम की कथा निरंतर होती है, अर्थात् सर्वत्र एक रस परमात्मा की अनुभूतिमयी स्थिति बनती है। बहुत आगे की बातें हैं, पकड़ में नहीं आएंगी। पकड़ में तब आएंगी, जब स्वयं उस जगह पर चलकर देखोगे। शंकर स्वरूप संत सद्गुरु ने वहाँ जाकर सब देखा सुना है। इसलिए वह जानते हैं। ‘यह सब गुप्त चरित मैं गावा’। गुप्त चरित्र है यह। बाहरी बातें नहीं हैं। इसलिए भजन करो और चलकर खुद वहाँ पहुँचकर देखो। यह कहने में आने वाली बातें नहीं हैं - ज्यों गूंगे मीठ फल को रस अन्तरगत ही भावै।।’ अविगत गति कछु कहत न आवे।

वही कबीर वाली बात है कि.. तू कहता कागद की लेखी। मैं कहता निज आंखिन देखी।। प्रैक्टिकल बातें हैं। उनके लिए हैं केवल, जो साधन-भजन करना चाहते हैं। जिनके मन में परमात्मा के लिए प्रेम है और जिनकी अभिरुचि आध्यात्मिक बातों में रहती है। जो वास्तव में सच्चाई को जानना चाहते हैं। उन्हें यहां महात्माओं की शैली से कुछ बता दिया जाता है। इसलिए कि अगर इनमें से कुछ बातें पकड़ कर चल पड़ेंगे, तो चलते-चलते एक न एक दिन मंजिल भी मिल ही जाती है।

जैसे एक कंकड़ फेंक दिया जाता है तालाब में। तो तरंगें बनती हैं और चल पड़ती हैं किनारे की तरफ। फिर वहाँ पहुँचकर ही मानती हैं। तो यह सत्संग जब तुम्हारे मानस में तरंग पैदा कर दे, तब ठीक है। मन में हलचल मचनी चाहिए, इस प्रपंच से छूटने की छटपटाहट आए, भगवान के लिए व्यग्रता जाग जाय-हृदय में भगवान के प्रेम की तरंग आ जाय तो काम बन जाय। लेकिन तरंग तो वहीं उठेगी जहाँ पानी होगा। जहाँ पानी ही नहीं रह गया, वहाँ तरंग नहीं उठेगी। माया की मार खाते-खाते जो ठंडे पड़ गए हैं, गर्मी बिल्कुल रह नहीं गई है। आसक्ति रूपी सर्दी जिनके अन्दर इतनी बढ़ गई है, कि उनके मानस में जड़ता आगई है - संसार रूपी बर्फ वहाँ जमावट ले चुका है। पत्थर जैसा दृढ़ हो गया है। तो उसमें सत्संग कैसे तरंग पैदा करेगा। बर्फ ही बर्फ है, वहाँ-संसार ही संसार भरा है, दिल दिमाग में उसी की चमक और सफेदी में अंधा है, वहाँ तरंग नहीं उठेगी। वे तो रोज-रोज सुनते रहेंगे, और ज्यों के त्यों रहेंगे।

इसलिए सत्संग के लिए पात्रता होनी चाहिए। सही पात्र हो, सत्संग का अधिकारी हो, उसके लिए ये सब बातें कही-बताई जाती हैं। सबके लिए नहीं बताई जाती। सत्संग रूपी अमृत को सुपात्र में रखना पड़ता है।

“आरत अधिकारी जहं पावहिं। गूढ़ तत्त्व न साधुदुरावहिं।।”

तो अब उत्तर काण्ड के अन्त में इन सारे प्रश्नों के उत्तर दे दिए गए हैं - ईश्वर क्या है, जीव क्या है, माया, ज्ञान, भक्ति, और भी वे सब बातें जो जनरली लोग पूछते रहते हैं, बता दी गई हैं। इसमें एक यह मूलबात खूब याद रखने की है कि -

‘राम भजन बिनु सुनहु खगेसा। मिटइ न जीवन केर कलेसा।।’

और राम कैसा है कि -

‘राम ब्रह्म चिन्मय अबिनासी। सर्वरहित सब उर पुर वासी।।’

इएलिए ऐसे उस परमात्मा राम की साधना आराधना करके इस मानव जीवन को सार्थक करना चाहिए। गोस्वामी जी कहते हैं

‘सोई सर्वज्ञ गुनी सोइ ज्ञाता। सोई महि मंडित पंडित दाता।।

धर्म परायण सोई कुल त्राता। राम चरन जाकर मन राता।।’

हरि: ओम

श्री गुरुदेव भगवान की जय

मानस बोध भाग-2 समाप्त

इस प्रकार मानस बोध भाग 1 व 2 सम्पूर्ण हुआ।

ओमपूर्णमदः पूर्णमिदम् पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
सर्वे भवन्तुसुखिनः सर्वेसन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ॥

शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!